मज़बूत दिल, तगड़े दिमाग़

लेखक
पो० डी० टण्डन

लखनऊ पब्लिशिंग हाउस
लखनऊ

प्रस्तावना

हर समझदार युवक को अपने जीवन दीपक को जलाने और उसकी ज्योति देखने की इच्छा होती है । लेकिन सवाल अवसर यह उठता है कि लौ कहां से लाये और किस लौ से अपनी जिन्दगी के चिराग को जलाये । ज्यादातर यह लौ महान् व्यक्तियों के जीवन की कहानी से मिलती है । इन लोगों की वीरता, योग्यता, त्याग, संघर्ष, और सफलता के किस्से इन्सान के दिलों पर गहरा प्रभाव डालते हैं और जिन्दगी में सही रास्ता बताते हैं । वीर, प्रतिभाशाली, विद्वान और देशभक्त की पूजा अनादिकाल से चली आ रही है और इनके सच्चे पुजारियों ने अपने जीवन को अक्सर सफल बनाया है ।

इस पुस्तक में भारत के उन व्यक्तियों के बारे में लिखा गया है जिन्होंने अपनी योग्यता की छाप लोगों पर लगाई, त्याग किये, कड़ी यातनायें झेली और भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी वीरता से भाग लिया । इनके जीवन की कहानियां नौजवानों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं । मैंने करीब करीब इन सब महान् नर नारियों को नजदीक से देखा है, उनका एक माने में साथ भी किया है और समझा है । उनमें जो बड़ी बड़ी विशेषतायें हैं मैंने उनकी चरचा यहां की है । उनकी त्रुटियों को बताने का कोई खास प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उनके गुणों के सूरज के सामने उनकी छोटी छोटी कमजोरियों के सितारे चमकते ही नहीं । अगर इस पुस्तक के पढ़ने से नई पीढ़ी के कुछ भी लोगों को प्रेरणा मिली और वह अपनी जिन्दगी को एक सच्चे और अच्छे ढांचे में ढाल सके तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा ।

पी० डी० टण्डन

आभार

इस पुस्तक में जो चित्र छपे हैं उनमें से बहुत से तो लेखक ने खुद ही लिये, परन्तु कुछ चित्र उन्हें श्री विनायक राव घोरपडे, श्री एन० एन० मुकर्जी, पब्लिकेशन डिवीजन, भारत सरकार, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश इत्यादि से प्राप्त हुए हैं उन सबके लिए लेखक और प्रकाशक आभार प्रकट करते हैं।

आभार

इस पुस्तक में जो चित्र छपे हैं उनमें से बहुत से तो लेखक ने खुद ही लिये, परन्तु कुछ चित्र उन्हें श्री विनायक राव घोरपडे, श्री एन० एन० मुकर्जी, पब्लिकेशन डिवीजन, भारत सरकार, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश इत्यादि से प्राप्त हुए हैं उन सबके लिए लेखक और प्रकाशक आभार प्रकट करते हैं ।

पृष्ठ

गांधी जी ऐतिहासिक लोकनायक थे जिन्हें हम सदैव श्र
पूर्वक स्मरण करेंगे । वह हमारे बीच नहीं है पर उनका संदेश
पीढ़ियों को प्रभावित करता रहेगा । यह दुख की बात है कि

उनके सिद्धान्तों के अनुरूप आचरण करने में समर्थ नहीं हो
पर जब तक उनके सिद्धान्तों का पालन नहीं होगा त
संसार में सुख और शान्ति सभव नहीं।

गांधी जी का व्यक्तित्व शक्तिशाली था। वह एक म
जो भविष्य का आभास प्राप्त कर सकते थे और वर्तमान क
सांचे में ढाल सकते थे। वह प्रेमपात्र, और सम्मान पात्र ने
उनके पास कोई अस्त्र शस्त्र नहीं थे, फिर भी वह श्रेष्ठ सेना
सर्वोच्च गुण सम्पन्न सेनापति और कुशल व्यूह रचयिता थे।
कार्य प्रणाली शुद्ध और कार्यविधि असाधारण थी। वह अप
द्वंदियों पर फौलाद के अस्त्रों से नहीं वरन् प्रेम, विनम्रत
सदाशयता के अस्त्रों से प्रहार करते थे। चर्चिल ने एक बा
था, "गांधी, जो कभी इनर टेम्पिल (ग्रेट ब्रिटेन की एक कानून
संस्था) का दीक्षित वकील था और अब विद्रोही फकीर है, स
प्रतिनिधि से समता के आधार पर समझौता वार्ता चलाने क
वाइसराय भवन की सीढ़ियों पर अधनंगे चढ़ते हुए देखकर
और लज्जा उत्पन्न होती है।" पर चर्चिल को अपने वक्तव्य की
अनुभव करनी पड़ी। अब समस्त संसार जानता है कि पर
का यह प्रिय पुत्र किसी भी मानव से समता के आधार पर बा
सकता था। वह अपने युग के महामानव थे। उनके समकालीन
पुरुषों का कोई भी स्थान और पद क्यों न रहा हो पर वे
समक्ष छोटे मालूम पड़ते थे। जिन्होंने उनकी निन्दा की उन्हें
आखिर उनकी प्रशंसा की। उनके व्यक्तित्व में कोई जादू था।
आकर्षण को रोका नहीं जा सकता था। उनके कार्यों में चेत

गई। हमारे जीवन को तप्त और प्रकाशित करने वाला सूर्य अस्त हो गया और हम शीत तथा अंधकार में कांपने लगे। परन्तु वह हमें ऐसा अनुभव नहीं करने देंगे। आखिर उस ज्योति ने जिसे हमने इतने वर्षो तक देखा उसी दैवी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ने हमें भी तो परिवर्तित कर दिया है।" हमें अपना विश्वास दृढ़ रखना चाहिए और उनके निर्देशानुसार काम करने का संकल्प लेना चाहिये।

हमें इस बात का गौरव है कि हमारे देश में ऐसी महान आत्मा का जन्म हुआ। वह अब भी हमारे बीच में जीवित हैं। उनका जीवन स्वयं के लिए नहीं वरन् गरीबों और पीड़ितों के लिए था। वह जीवित हैं क्योंकि उन्होंने दूसरों के लिए आत्मोत्सर्ग किया। उनका जीवन-व्रत मानवता को उत्कर्ष पर पहुंचाना तथा निराश आत्माओं में प्रसन्नता की लहर उत्पन्न करना था। उन्होंने अनेक लड़ाइयां लड़ी और विजय प्राप्त की क्योंकि उनका उद्देश्य पवित्र था। वह विजयी हुए क्योंकि वह दूसरों के हित के लिए लड़े थे, वह विजयी हुए क्योंकि उनकी मनशा शत्रु को भी धूल में मिलाने की नहीं थी। उनके लिए विजय का अर्थ प्रतिद्वंदी का परास्त होना नहीं वरन् अपने सिद्धान्तों की सफलता था। अपनी मृत्यु में भी उन्हें विजय श्री प्राप्त हुई क्योंकि उन्होंने अपने सिद्धान्तों के लिए देहोत्सर्ग किया। यदि किसी उपवास में उनका देहान्त हो गया होता तो एक हिन्दू के हाथों से उनकी हत्या होने की लज्जा से हम मुक्त रहे होते। भाग्य की यह दुखान्त-विडम्बना है कि महानतम हिन्दू, हिन्दुत्व के नाम पर एक हिन्दू द्वारा मारा गया। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा था, "हिन्दू समाज के लिए शोक की बात है कि एक मात्र हिन्दू जिसकी हिन्दुत्व के आदर्शों और दर्शन के प्रति पूर्णतः निष्ठा थी, एक हिन्दू के हाथों हत्या हुई।"

गांधी जी ने भारत को आज़ाद कराया। जीवन भर वह जुल्म के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाते रहे। उन्होंने देश में सैंकड़ो नेता

बना दिए जो उनके कहने पर काम करते थे और अपने देश पर प्राण देने को तैयार रहते थे। उनके काम की कहानी कहां तक सुनायी जाये। मैं अब आपको दिलचस्प वाक़यात सुनाता हूं जिससे आपको उनकी विनम्रता और बड़प्पन का अन्दाजा होगा। गांधी जी अपनी गलती मानने में कभी नहीं हिचकते थे क्योंकि वह सत्य और न्याय के पुजारी थे। उन्होंने एक बार अपनी गलती को "हिमालयन ब्लन्डर" कहा था। बापू हमारे इतिहास में अमर हैं और उनकी मानवता की कहानियां उन्हें सदैव जीवित रखेंगी। आने वाली पीढ़ियों को बड़ा आश्चर्य होगा कि ऐसा निराला इंसान भारत में पैदा हुआ था। आज मैं दो किस्से सुनाऊंगा जो यह बताएंगे कि बापू कितने न्यायप्रिय थे और अपनी गलती मानने को सदैव तैयार रहते थे।

मैंने १६४५ में एक पुस्तक जवाहर लाल नेहरू पर तैयार की थी और बापू से उसकी भूमिका लिखने का अनुरोध किया। भाग्यवश वह एकदम राजी हो गए। उनका पत्र पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई। एकदम मैंने पुस्तक की एक लिपि बापू को भेज दी और उनकी लिखी हुई भूमिका का इंतजार करता रहा। महीनों गुजर गए न कोई भूमिका मिली न पत्र का उत्तर। इस बात से मैं बड़ा परेशान रहता था और दिल में बड़ा मलाल था। समझ में नहीं आता था कि क्या करूं। उन दिनों मैं आचार्य कृपलानी की कृपा से स्वराज्य भवन में रहता था। नेता लोग सब जेल में थे और मेरे दिल में बेबसी का जलेड़ा था। समझ में नहीं आता था कि किसकी सहायता से बापू से भूमिका मंगवाएं। अचानक यह मालूम हुआ कि एक महिला ने कुछ मेरे खिलाफ बापू से कहा है। वह मुझे करीब करीब नफरत करती थी और मुझे भी उनके पावडर पुते चेहरे को देखकर बुखार आ जाता था। उनसे बातचीत करने में बड़ी उलझन होती थी लेकिन अब इन सब बातों से क्या? शिकायत तो हो ही गई। सफाई देने का कोई मौका नहीं। क्या शिकायत थी यह भी नहीं मालूम। भूमिका

खटाई में पड़ गई। कैसे सफाई हो, कैसे भूमिका मिले यह चिन्ता बराबर सताती थी।

महीनों के बाद किस्मत जागी। आचार्य जे० बी० कृपलानी, जिनकी मुझ पर सदैव कृपा रही है, जेल से छूटकर स्वराज्य भवन आए। मैंने उनको सारा किस्सा सुनाया। एक बार जब वह बापू से मिले तो उन्होंने खुद भी उनसे कहा कि वादा करने के बाद टंडन को भूमिका क्यों नहीं भेजी गई। इसके बारे में उन्होंने एक पत्र पहले ही बापू को लिखा था। कृपलानी जी को बताया गया कि किसी ने बापू से मेरे बारे मे कुछ कहा था इसीलिए मेरा काम अभी तक नहीं हुआ। बापू कुछ दुविधा मे पड़ गए। कृपलानी जी ने कहा कि जब वह मेरे बारे में कह चुके थे तो उनको पहले उनसे पूछना चाहिए था न कि किसी और की बात पर ध्यान देना था। बापू को यह बात समझ में आई और शायद उन्होंने यह महसूस किया कि कुछ गलती हो गई है। उन्होंने मुझे तुरन्त जोरदार भूमिका भेज दी और उसके साथ यह पत्र भेजा जिससे मुझे बड़ी खुशी हुई। उन्होंने लिखा:

> भाई टंडन, मुझे दुख है तुम्हारे संग्रह के लिए इससे पहले कुछ भेज नहीं सका। एक कारण मेरा व्यव-

साथ रहा और दूसरा कुछ न मिलने की अनिच्छा। लेकिन भाई जवाहर साथ न थे, मैं कुछ न लिखूं यह भी कैसे हो सकता था? अब तो मेरी इतनी आशा है कि मेरा आगमन समय के बाहर नहीं पहुंचेगा।
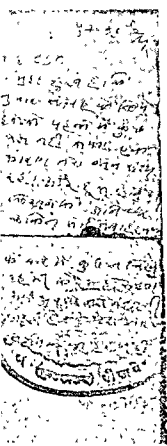
आपका,
मो० क० गांधी

बात है बहुत पुरानी। महीना था जून का। इलाहाबाद की कर्मापशी गर्मी शहर को बुरी तरह तपा रही थी और लोग बारिश के लिए तरस रहे थे। उन दिनों देश में साम्प्रदायिक झगड़े हो रहे थे और बापू दुखी और चिन्तित थे। एक दिन गांधी जी इलाहाबाद से गुजरे। स्टेशन पर लोगों का एक बड़ा भारी हुजूम था। बहुत से चिल्ला कर बापू की जय बोल रहे थे और यह कहते थे, "बापू जी, आप बहुत दिन से इलाहाबाद नहीं आए हैं। लौटते समय यहां जरूर रुकिएगा।"

बापू टस्स से मस्स न हुए। जहां बैठे थे वहीं बैठे रहे। बेहद गर्मी के कारण एक बरफ की सिल उनके पास रक्खी थी। उनके चेहरे पर चिन्ता विराजमान थी। साम्प्रदायिक झगड़ों ने उनकी आत्मा को कष्ट पहुंचाया था। वह बड़ी गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। बड़ी हिम्मत करके उनके डिब्बे में मैं पहुंच गया और मृदुला साराभाई से बात करने लगा। न जाने क्यों मृदुला ने बापू से अचानक पूछा, "बापू, इनको पहचाना?"

"क्यों नहीं, नेशनल हेरल्ड वाला टंडन है, न" उन्होंने कहा। यह सुनकर मैं बहुत खुश हुआ। मैं उन्हें सिर्फ दो बार पहले मिला था। लाखों आदमी उनसे मिलते थे। उन्होंने मुझे पहचान लिया मैं ने अपना सौभाग्य समझा। जाते समय मैंने प्रणाम किया और बापू बोले, "इन लोगों को कहो कि चिल्लाएं नहीं और भी इनको गरम

लगेगा।" गाड़ी चली और सब लोग जोर से चिल्लाए, "महात्मा गांधी की जय!"

गांधी जी मानवों में महामानव थे। शक्ति के स्रोत थे। वह मसीहा की तरह बोलते थे और महान सेनापति की तरह कार्य करते थे। वह जहां बैठ जाते वह स्थान मंदिर बन जाता, वह जो कुछ लिख देते वह धर्म संदेश बन जाता। उनसे भेंट, खोज के लिए यात्रा के समान होती थी। वह कोई बात दबाते या छिपाते नहीं थे। मुझे ७ अगस्त १९४२ में, उन्हें सुनने का बम्बई में मौका मिला था। मुझे उनका वह दृढ़ और शानदार रूप स्मरण है जिसने ब्रिटिश राज्य को कड़ी चुनौती दी थी। वह मृदुलता से बोले। कदाचित वह धीमे स्वर में बहुत ही सधे शब्द बोले। फिर भी उनकी वाणी में लौह संकल्प था जिसने समस्त देश को उत्तेजित तथा संघर्ष के लिए उत्प्रेरित कर दिया। वह बहुत देर तक बोले तथा श्रोतागण अवाक बैठे बैठे उनके प्रत्येक शब्द को पीते रहे। उन्होंने अंत में कहा, "मंच तैयार है। परदा गिरता है। समय आ गया है। करो या मरो।" पंडाल में "महात्मा गांधी की जय" की ध्वनि और प्रतिध्वनि गूंजने लगी। राष्ट्र, संग्राम के लिए, क्रान्ति के तूफानी सागर में कूदने के लिए तैयार हो गया।

उन्होंने पतितो—विशेषतः अछूतों के लिए बहुत कुछ किया। सन् १९३२ में जब ब्रिटिश सरकार हरिजनों को हिन्दू जाति से पृथक कर रही थी तब उन्होंने यरवदा जेल में आमरण अनशन किया और स्व० रैमजे मेकडानल्ड को लिखा, "मेरी पुकार परमात्मा की गद्दी तक पहुंचेगी। मैं हिन्दू अन्तरात्मा को द्रवित करने और ब्रिटिश सरकार की अन्तरात्मा को जागृत करने के लिए असाधारण यत्न करूंगा।" गांधी जी अछूतों के प्रति अर्ध मानुषिक व्यवहार से बहुत दुखी थे। उनके लिए यह विचार ही असहनीय था कि हरिजन के स्पर्शमात्र से हिन्दू अपवित्रता का अनुभव करें। एक बार उन्होंने लिखा, "मैं जन्मजात अछूत नहीं हूं परन्तु स्वेच्छा से गत ५० वर्षों से अछूत हूं।"

हरिजन उद्धार कार्य उन्हें बहुत प्यारा था और उन्होंने हरिजनों के लिए कई बार अपनी जान की बाजी भी लगा दी।

गांधी जी ने अपने देश को स्वतंत्र कराया और अपने जीवन व्रत को पूरा किया। यह ऐसी विजय थी जिस पर संसार का कोई भी नेता गौरव अनुभव करता। परन्तु उनका केवल इतना ही जीवन व्रत नहीं था। उन्होंने भारत को एक विशाल प्रयोगशाला बनाया जिसमें उन्होंने सत्य के प्रयोग किए। यद्यपि वह स्वयं को यथार्थवादी मानते थे पर वह भविष्यदर्शी व विशुद्ध आदर्शवादी थे। वह सदैव ऐसी महान आत्मा के रूप में स्मरण किए जायेंगे जिसने अपने जीवन को आगामी युगों के लिए अनुकरणीय बना दिया।

जवाहर लाल नेहरू

नेहरू की जिन्दगी एक न्यारी जिन्दगी थी। उन्होंने अपने जीवन में कितने ही बड़े बड़े काम किए। अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी, लाखों आदमियों से मिले, करोड़ों आदमियों को अपना सन्देश सुनाया, स्वाधीनता संग्राम में वीरता से नेतृत्व किया। आज़ादी पाने पर हुकूमत का काम १७ साल तक सम्भाला। दुनिया में भारत के सम्मान का झंडा ऊंचा उठाया, दुनिया पर अपनी योग्यता और वीरता की छाप लगाई। हैरत होती है यह सोचकर कि वह कितना काम करते थे और सब काम को कितनी शान से निभाते थे। जितना ही समय गुजरता जाता है उतनी ही हम जवाहर लाल नेहरू की महत्ता को ज्यादा समझते हैं। लाखों आदमी उनको याद इसलिये नहीं करते क्योंकि वह भारत के प्रधान मंत्री थे बल्कि इसलिए कि वह मानवता के महासागर थे। उनके ऐसे आदमी दुनिया में बहुत कम हुए हैं। बहुत देशों में बहुत से प्रधान मंत्री हुए हैं और उनमें से ज्यादातर भूले जा चुके हैं क्योंकि उन्होंने लोगों के दिल और दिमाग पर अपने विचारों की कोई गहरी छाप नहीं लगाई थी। लोग नेहरू को इसलिए याद करते

हैं और करेंगे क्योंकि जनता ने नेहरू में एक सच्चे और असली इन्सान की तसवीर देखी थी।

नेहरू की गरीबों के साथ बड़ी हमदर्दी थी और वह जनता के सच्चे सेवक थे। उन्होंने अपने जीवन के आखिरी दिन तक अपने देश की बड़ी हिम्मत और समझ से सेवा की। उन्होंने एक बार कहा था, "मैं लोगों के प्रेम से दवा हुआ हूं। मेरे देशवासियों ने मुझे प्रधान मंत्री बनाया और यह बड़े सम्मान की बात थी लेकिन उन्होंने जो मुझे मुहब्बत दी है वह शायद और किसी प्रधान मंत्री को न मिल सके, उसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूं। लोगों ने मुझे अपने दिलों में जगह दी और यह बहुत भारी बात है। मेरी जिन्दगी की अब शाम आ गई है परन्तु मैं अपने लोगों की, तब तक सेवा करता रहूंगा जब तक मेरा शरीर राख न हो जाए। लोगों ने मेरा बड़ा सम्मान किया है और प्रेम प्रदान किया है।"

जहां कहीं लोगों को दुख होता था वहां नेहरू की हमदर्दी उनके साथ होती थी। वह लोगों का हर समय दुख में साथ देना चाहते थे। प्रकृति ने उन्हें एक अनोखी प्रतिभा दी थी वह लोगों के दिलों की आवाज हो गए थे और उनकी आशाओं के प्रतीक थे। वह इसानियत के एक सच्चे पुतले थे। वह लोगों के दिमागों पर जादू कर देते थे और जनता उनकी बात मानती थी। दुनिया के बड़े से बड़े मनुष्य जब उनसे मिलते थे तो वे नेहरू का लोहा मानते थे। बरनार्ड शा, आइनस्टाइन और टैगोर ऐसे बड़े लोगों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। लार्ड लिनलिथगो ने बातचीत के दौरान में नेहरू से एक दिन कहा, "मिस्टर नेहरू, जब आप इतने ऊंचे स्तर में बात करते हैं तो मैं अक्सर [illegible] रह जाता हूं।"

[illegible] दीवानी दुनिया में बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो दौलत [illegible]ह नहीं करते। नेहरू को धन की परवाह बिल्कुल नहीं थी जो लोग दौलत की बहुत चरचा करते थे नेहरू उनको नापसन्द

करते थे। उनका विचार था कि जो लोग दौलत की बहुत चरचा करते हैं वे लोग ओछे आदमी हैं। कई साल की बातें हैं नेहरू अमेरिका में एक दिन बहुत बड़े बड़े उद्योगपतियों के साथ खाना खा रहे थे। एक उद्योगपति ने बड़े तडाके से कहा, "प्राइम मिनिस्टर साहब, क्या आपको यह अन्दाजा है कि आप २० बिलियन डालर के मालिकों के साथ खाना खा रहे हैं ?" नेहरू को इस पैसे के पागलपन से बहुत बुरा लगा और उन्होंने हिन्दुस्तान आने पर कई बार उस बात की चरचा अमरीकी राजदूत से की।

११ अप्रैल १९५५ में नेहरू ने सदन मे कहा था, "मुझे सम्पत्ति के लिए ज्यादा इज्जत नही है। सदस्यगण मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं कहूं कि दौलत मेरे ऊपर हावी नही है। दौलत रखना मुझे एक झझट की बात मालूम होती है। जिन्दगी मे दौलत से अधिक सम्बन्ध नही होना चाहिए। मैं लोगों का दौलत प्रेम समझ नही पाता हू।"

मैं आपको एक रोचक कहानी सुनाता हूं जो मुझे श्री लाल बहादुर शास्त्री ने सुनाई थी। इससे आपको यह पता चलेगा कि नेहरू छोटे से छोटे लोगो का भी कितना ख्याल रखते थे। बात है सन् १९३७ की। नेहरू अपने साथियों के साथ रात में एक गाव से लौट रहे थे। वह मोटर खुदही चला रहे थे। रात अंधेरी थी। जाडा जोरों का पड़ रहा था और चारों तरफ कोहरा छाया हुआ था। मोटर चलाना दूभर हो रहा था लेकिन उन्होंने यह तै किया कि वह हर साथी को उसके घर पहुंचाएंगे। रास्ते में अचानक न जाने कहां से आकर एक गाय मोटर से टकरा गई। उसका एक सींग टूट गया। किसी और ने देखा भी नही परन्तु नेहरू ने एकदम कार रोकी और गाय के मालिक से मिलने की कोशिश की। कुछ देर बाद जब कुछ लोग उधर से गुजरे तो नेहरू को गाय के मालिक की खोज में परेशान देखकर उन्होंने कहा, "पंडित जी आप परेशान न हों। कोई बात नही है। आप आनन्द भवन जाइए।"

जवाहर लाल जी ने यह बात मंजूर नहीं की। जब लोगों ने उन्हें इस बात का यकीन दिलाया कि कल सुबह वह गाय के मालिक को लेकर आनन्द भवन आएंगे तब वह वहां से गए। दूसरे दिन गाय वाला आनन्द भवन गया और नेहरू ने गाय का इलाज कराने के लिए उसे एक अच्छी रकम दी।

नेहरू बच्चों को बहुत प्यार करते थे और उनसे उन्हें बड़ी आशाएं थी। बच्चों की उन्हें सदैव चिन्ता रहती थी और वह चाहते थे कि भारत के बच्चों को सब प्रकार की सुविधाएं मिलें। एक दिन आनन्द भवन के बरामदे में आनन्द भवन के नौकरों के बच्चे पंडित जी को "जै हिन्द" कहने के लिए जमा हो गए। नेहरू बाहर आए और उन्होंने हर बच्चे को प्यार किया और पूछा, "कहो, कोई दिक्कत तो नहीं है?" एक बच्चा उसमें से बोल उठा कि "पंडित जी, बरसात में जब हम लोग घर लौटते हैं तो सारे कपड़े और किताबें पानी में तर हो जाते हैं।" जवाहर लाल जी ने यह बात सुन ली और दिल्ली जाते ही बच्चों के लिए झोले और बरसातियां भेज दीं। बड़े लोग बहुधा छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं देते पर जवाहर लाल जी हर एक की बात सुनते थे और सहायता करते थे।

नेहरू एक गजब के इंसान थे। वह कभी छोटी बातों में नहीं पड़ते थे। एक दिन एक कांग्रेसी नेता आनन्द भवन में आए और उन्होंने आधा घंटा तक एक आदमी की बेतहाशा बुराई की। जब उस आदमी ने बोलना बंद किया तो पंडित जी ने कहा, "जो आप कह रहे हैं मुमकिन है सब सही हो, लेकिन जो लोग दूसरों की इस तरह बुराई करते हैं वह खुद अच्छे आदमी नहीं होते।" शिकायत करने वाले यह सुनकर एकदम चकित रह गए और मैं ने उस दिन एक बड़ा सबक सीखा। जब कभी किसी की शिकायत करने को जी चाहता है तो फौरन नेहरू के शब्द मुझे याद आ जाते हैं और मैं यह सोचता हूं कि किसी की बुराई करना कोई अच्छी बात नहीं।

दुनियां के कई लेखकों और इतिहासकारों ने नेहरू की मौत के बाद नेहरू के किए कामों और उनके विचारों की तौल नाप की है। कई किताबें देश और विदेश के लोगों ने नेहरू की मृत्यु के बाद उन पर लिखी हैं और उनके विचारों और कार्यों का विश्लेषण किया है। ऐसी किताबें बरसों तक निकलती रहेंगी क्योंकि नेहरू ने भारत के दृष्टिकोण को बदला और नया रास्ता दिखाया। जो लोग ऐसा करते हैं उनका स्थान इतिहास में अवश्य होता है। ज्यों ही समय गुजरता जाता है उतना ही हमको यकीन होता जाता है कि नेहरू का दिखाया हुआ रास्ता सच्चा और सही है। नेहरू भारत की शक्ति और एकता की एक शानदार प्रतीक थे। उनकी शक्ति मशीनगनों और बन्दूकों पर निर्भर नहीं थी, जनता का प्रेम और श्रद्धा उनकी महान् शक्ति थी।

जवाहर लाल जब साम्प्रदायिकता की निन्दा करते थे तो वह संसार में भाई चारे का प्रचार करते थे और लोगों को प्रेम से रहने का रास्ता बताते थे। उनकी आत्मा को बड़ा कष्ट होता था जब वह देखते थे कि इंसान दूसरे इंसान को तबाह करता है और जान भी ले लेता है सिर्फ इसीलिये कि वह भिन्न भिन्न मजहबों के मानने वाले हैं। जब वह अन्तर्राष्ट्रीयता की बात करते थे तो इसका यह मतलब नहीं था कि वह अपने देश को किसी से छोटा समझते थे या देश के लिए किसी से उनका प्रेम कम था। उनका मतलब यह था कि आज कल के जमाने में कोई भी देश दूसरे देशों से अलग रह कर, और दूसरे देशों की विचार धाराओं को बिना समझे हुए उन्नति नहीं कर सकता। वह सारे देशों को एक दुनिया मानते थे और चाहते थे कि सारे संसार के लोग मिल जुल कर रहें और एक दूसरे से मदद लेकर सारा देश तरक्की करें। नेहरू ने अपने देशवासियों को नए नए विचारों से प्रभावित किया इसलिए उनका नाम इतिहास में अमर है। उनके विचारों ने दुनिया पर एक शानदार छाप लगाई है और उनका नेतृत्व भारत के लिए एक बड़ी देन थी।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

यह ओजस्वी देशभक्त, मातृभूमि का यह महान् लाल, युगों युगों तक भारतियों और वीरों से स्मरण किया जायगा। जनता को पावन कार्यों और महान् त्यागों के लिए उत्प्रेरित करेगा। वह अपने अनुयायियों से कहा करते थे, "इसे कभी न भूलो कि सबसे बड़ा पाप गुलाम रहना है।" वह उन्हें यह भी याद दिलाते रहते थे "अनीति तथा अन्याय से समझौता करना सबसे बड़ा अपराध है।" वह यह भी कहा करते थे, "सबसे बड़ा गुण विषमता के विरुद्ध संघर्ष करना है, चाहे इसके लिए कुछ भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।"

नेताजी आध्यात्मिक विचार वाले व्यक्ति थे। परमेश्वर में उनका विश्वास, साहस और आशावादिता का अटूट स्रोत था। वह बिना किसी झिझक के शक्तिशाली से शक्तिशाली सत्ता के विरुद्ध डट जाते थे। आध्यात्मिक विश्वास से उन्हें शान्ति, दृढ़ता, आत्म-विश्वास तथा विनम्रता प्राप्त होती थी। जब वह संघर्षरत रहते थे तब भी शान्ति और एकान्त की कामना करते थे। हिमालय तो उन्हें

सदैव आमंत्रण सा देता रहता था। उनमे सन्यासी के गुण थे। सिगापुर में वह कभी कभी रामकृष्ण मिशन के स्वामी जी से मिला करते थे। कभी कभी बहुत रात बीते वह अज्ञात रूप मे "मिशन" के प्रार्थना भवन में हाथ में माला लेकर बद हो जाते थे तथा घटों साधना किया करते थे। नेताजी के एक निकट साथी तथा अस्थायी आजाद हिन्द सरकार के एक मंत्री श्री एस०ए० अय्यूर के कथनानुसार उनके पास अपनी साधना के बाह्य प्रतीक एक छोटी गीता, एक छोटी तुलसी की माला तथा पढ़ने का एक चश्मा था। ये एक छोटे मे बटुए मे रखे रहते थे। इस बटुए के सम्बन्ध में उनके निजी नौकर के अतिरिक्त और कोई कुछ भी नही जानता था। नेताजी ईश्वर के बारे में चरचा नहीं करते थे। वह तो ईश्वर के सतसग मे जीवन व्यतीत करते थे।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने कांग्रेस के नेताओ के खिलाफ बगावत का झंडा उठाया था। सारे बड़े बडे नेतागण एक तरफ थे, सुभाष बाबू दूसरी ओर। गाधी जी की ताकत को जानते हुए भी उन्होंने उनकी नीतियों के खिलाफ जोरों की आवाज उठाई। दूसरा विश्व-युद्ध चल रहा था और बोस बाबू का यह कहना था कि इस समय अंग्रेजों को भारत छोडने को मजबूर किया जा सकता है। उन्होंने चारों तरफ देश में अपनी बात सुनाई और जहां जाते थे, लाखों आदमी उन्हें सुनते थे और जनता उनकी बात समझती थी। जब वह इलाहाबाद आए तो उनका बेतहाशा स्वागत हुआ। हम उन्हें जानते थे और आनन्द भवन में कई बार मुलाकात हुई थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हम पढ़ते थे और विद्यार्थियों की नेतागीरी करते थे या कम से कम ऐसा दावा तो भरते ही थे। मैं ने उनसे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के जलसे में आकर भाषण देने का इसरार किया।

"देखो आवेंगे जरूर, लेकिन जल्दी न करो। खत लिख देना", कहकर उन्होंने बात उस समय टाल दी। जब वह आनन्द भवन से जा रहे थे मुझे देखकर बोले, "यह न समझो कि मैं नहीं आऊंगा। जरूर

आऊंगा और तुम सबसे मिलूगा।" उम्मीद बड़ी। मैं ने उन्हें खत लिखा। कुछ हफ्तों बाद अचानक तार आया। उसमे प्रोग्राम दिया था। वह आए और बड़ी भारी मीटिंग हुई। वह बोलते समय सच्चाई और जोश की तसवीर मालूम होते थे। गजब का भाषण हुआ। सुभाष बाबू के जय के नारे लगे।

उस दिन इलाहाबाद छोड़ने से पहले मैं ने कुछ देर तक उनसे बातचीत की थी। मैं ने पूछा, "सारे नेता आपके खिलाफ हैं आप कैसे कामयाब होंगे? आपकी बात यह लोग मानने वाले नहीं। जवाहर लाल जी भी आपके साथ नहीं है।"

वह एक मिनट चुपचाप खड़े रहे। मैंने उनकी आंखों में गम की झलक देखी। उन्होंने कुछ क्षण बाद कहा, "अगर मुझे इस संघर्ष में कोई तकलीफ है तो यह है कि जवाहर लाल जी मेरा साथ नहीं दे रहे हैं। अगर वह साथ दे तो फट्टा लौट जायें।"

"लेकिन जब साथ नहीं है तो········?" मैं ने पूछा।

"अकेले लड़ेंगे। सच बात कह रहा हूं। जब हमारी बात ठीक है तो डरना क्या। अगर अकेले भी है तो क्या? यदि सच्चाई साथ है तो अकेले आगे बढ़ेंगे। घबड़ाने की कोई बात नहीं है," उन्होंने कहा।

बात अंग्रेजी में हो रही थी। कुछ दिनों बाद जब मैं ने टैगोर की यह पंक्तियां पढ़ीः

"यदि तोर डाक सुने केऊ न आसे, तबे एकला चलो रे" तो मुझे ख्याल आया कि सुभाष बाबू यह जानकर कि मैं बंगला नहीं जानता हूं मुझे उस दिन गुरुदेव की इन महत्वपूर्ण पंक्तियों का सारांश सुना रहे थे। एक महान् कवि के मस्तिष्क से यह जोरदार पंक्तियां निकली थीं और एक महान् कर्मयोगी ने इन शब्दों को अमली जामा पहनाया था।

नेताजी का जन्म २३ फरवरी, १८९७ में कटक में हुआ था। सन् १९१३ में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा

द्वितीय स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। सन् १६१४ में अचानक वह आध्यात्मिक गुरु की खोज में हरिद्वार चल दिए पर कुछ समय बाद वापस चले आए और फिर विद्याध्ययन करने लगे। १६१६ में कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालेज के एक अध्यापक, ओटन ने भारतीयों के प्रति कुछ अभद्र शब्द कहे, इस पर सुभाष ने उन्हें पीटा। इस घटना से वह कालेज से निकाल दिए गए। सन् १६१६ में उन्होंने बी० ए० परीक्षा दर्शन में आनर्स के साथ प्रथम श्रेणी में, द्वितीय स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। सन् १६२० में उन्होंने आई० सी० एस० परीक्षा चतुर्थ स्थान प्राप्त करते हुए उत्तीर्ण की। उनकी दर्शन विषय में बड़ी रुचि थी। उन्होंने १६२१ में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से दर्शन में आनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने कुछ दिन सरकारी पद पर काम किया परन्तु उसे अपनी स्वतंत्र प्रकृति के प्रतिकूल पाकर इससे पद त्याग कर दिया। इसके बाद उनकी गांधी जी से मुलाकात हुई। दोनों एक दूसरे से प्रभावित हुए।

सन् १६२१ के असहयोग आन्दोलन में वह देशबंधु चित्तरंजन दास तथा मौलाना आजाद के साथ गिरफ्तार हुए। उन्हें ६ महीने कारावास का दंड मिला। इसके बाद तो उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा।

२६ जनवरी १६३६ में वह अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। १६४० में उनका कांग्रेस की नीति रीति से गहरा मतभेद हो गया तथा उन्होंने पृथक दल "फारवर्ड ब्लाक" (अग्रगामी दल) का संगठन किया। २७ जनवरी १६४१ को यह मालूम हुआ कि वह कलकत्ता में अपने निवास से रहस्यपूर्ण ढंग से गायब हो गये। वहां से वह काबुल, बर्लिन, रोम और टोकियो पहुंचे। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध युद्ध के लिये भारतीयों को संगठित किया। पूर्वी एशिया के देशों के भारतीयों और भारतीय सेना के आत्मसमर्पित सैनिकों का संगठन करके उन्होंने आजाद हिन्द

से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ने में नेताजी तथा उनकी आजाद हिन्द फौज के कार्यो का सगर्व उल्लेख करेंगे । पूर्वी एशिया मे नेताजी की गतिविधियो से ब्रिटिश सरकार आतंकित थी । आजाद हिन्द फौज की पराजय के वाद भी वह भयभीत थी क्योंकि आजाद हिन्द फौज की भावना जीवित थी तथा वह जनता में फैल गई थी । यद्यपि आजाद हिन्द फौज परास्त हो गई परन्तु उसने विजय के लिये पथ प्रशस्त कर दिया ।

राजेन्द्र प्रसाद

डा० राजेन्द्रप्रसाद भारत के उन नेताओं में से थे जो अपने आपको सबसे पीछे रख कर दूसरों को अपना नेता मान कर जीवन में काम करना चाहते थे, परन्तु उनकी योग्यता और शराफत लोगों को मजबूर कर देती थी कि वह उनको अपना नेता मानें और उनसे हर मामले पर सलाह मशवरा करें। उनका जीवन त्याग, सरलता और योग्यता की शानदार मिसाल है। उनसे नाराज होना उनके साथियों के लिए नामुमकिन था। उनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वह सबके साथ मिलजुल कर काम कर सकते थे और हर आदमी उनके साथ काम करने में खुश रहता था।

राजेन्द्र प्रसाद एक राजनीतिज्ञ ही नहीं, वरन् प्रकाण्ड विद्वान भी थे। उनमें बचपन से ही साहित्य तथा अन्य विषयों के प्रति गहरी रुचि थी। वह कई भाषाएं जानते थे और सरलता से उनमें लिख बोल सकते थे। उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में भी उच्च स्थान प्राप्त किये। उन दिनों ऐसा विश्वास किया
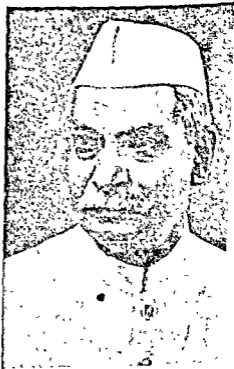
जाता था कि विहार बौद्धिक दृष्टि से बंगाल से हीन है । उस ज़माने में विहार के लोग बौद्धिक प्रतिभा के लिए विख्यात नहीं थे मगर राजेन्द्रप्रसाद ने यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर दिया कि विहार में भी उच्च बुद्धि विद्या निधान लोग हैं ।

हिन्दी में उनकी आत्मकथा हिन्दी साहित्य को एक महान् देन है । आत्मकथा पढ़ते समय उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की झलक मिलती है । इसकी भाषा सरल और स्पष्ट है । विचारों की अभिव्यक्ति मे ईमानदारी है । यह गुण बहुत कम साहित्यिकों मे पाये जाते हैं । सरदार वल्लभभाई पटेल ने इस पुस्तक के बारे में लिखा था: "उनकी आत्मकथा के हर पृष्ठ में राजेन्द्र बाबू की सरलता और विनम्रता की स्पष्ट छाप है । उनकी आत्मकथा भारतीय जन आन्दोलन के गत ३० वर्षों का इतिहास है ।"

राजेन्द्रप्रसाद स्वभावतः सकोचशील थे । उन्हे क्रोध नही आता था । उन्होंने अपनी आत्मकथा मे स्वय लिखा है, "मै बचपन ही मे दब्बू रहा हूं और किसी बड़े मामले में तुरन्त कोई फैसला नही कर पाता ।" जब गोखले ने राजेन्द्रप्रसाद को हिन्द सेवक समाज (सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी) में सम्मिलित होने के लिए लिखा तो वह इसके लिये तुरन्त तैयार हो गये, परन्तु बडे भाई की राय की उपेक्षा करने की न उनमें इच्छा थी और न हिम्मत ही । फिर भी उन्होंने अपने भाई को एक अत्यन्त विनम्र पत्र लिखा । इसमें उन्होंने "हिन्द सेवक समाज" में सम्मिलित होने की अनुमति देने की प्रार्थना की जिससे उन्हें देश सेवा का पूरा अवसर मिल सके । इस पत्र से उनके महान व्यक्तित्व का पता चलता है । उन्होंने लिखा : "भाई साहब, भावुक होने के कारण आपके सामने बात करने की मेरी हिम्मत नही । आपको कठिनाई और परेशानी में डालकर चला जाना कृतघ्नता होगी, परन्तु ३० करोड़ जनता के लिये मै कुछ त्याग करना चाहता हूं । श्री गोखले की सस्था मे सम्मिलित होकर व्यक्तिगत रूप मे मुझे कोई

त्याग नही करना पड़ेगा, मुझको ऐसी शिक्षा मिली है कि मैं जिस भी परिस्थिति में रहूं अपने को उसी के अनुकूल बना सकता हूं । मेरा रहन सहन भी सादा रहा है और इसलिये मुझे किसी विशेष सुविधा की आवश्यकता नही । जो कुछ भी मुझे संस्था से मिलेगा वही मेरे लिए पर्याप्त होगा । परन्तु मैं यह नही कह सकता कि आपको त्याग नही करना पडेगा । आपकी बड़ी बड़ी आशाएं थी और एक क्षण में उन पर पानी फिर जाएगा । परन्तु इस क्षणभगुर ससार मे धन, पद और सम्मान सभी नष्ट हो जाता है । जितना ही धन बढता है, उतनी ही आवश्यकतायें बढती जाती हैं । यद्यपि लोग कह सकते है कि उनको धन मे सतोष मिलता है । परन्तु जिन्हें थोड़ा बहुत भी ज्ञान है, वह जानते हैं कि संतोष हृदय की वस्तु है, बाहर से प्राप्त नहीं होती । करोड़पति की अपेक्षा एक गरीब आदमी अपने थोड़े पैसों से ही अधिक संतुष्ट रहता है । ऐसी स्थिति में हमे गरीबों से घृणा नही करनी चाहिये । संसार के कई महान् व्यक्ति सब से गरीब रहे हैं । यद्यपि प्रारम्भ में लोगों ने उन्हें यातनायें दी और उनको घृणा की दृष्टि से देखा, परन्तु मजाक उड़ाने और यातना देने वाले धूल में मिल गये, उनका कोई अस्तित्व नहीं, उनकी कोई बात भी नहीं करता, परन्तु जिन लोगों ने यातनायें भोगी और घृणा के पात्र बने, वे करोड़ों के हृदय और मस्तिष्क में बसते हैं । अगर जीवन की मेरी कुछ भी आकांक्षा है तो वह यह है कि मैं देश की सेवा में लगू । मुझ में मातृ-भूमि की सेवा के अतिरिक्त कोई भी महत्वाकांक्षा नही है । कौन राजा अथवा साधारण व्यक्ति है जो गोखले-सा प्रभावशाली है अथवा उनको उनका-सा ऊंचा स्थान और सम्मान प्राप्त है ? फिर भी क्या वह गरीब व्यक्ति नहीं है ?"

यह पत्र इस बात का प्रमाण है कि बचपन में ही राजेन्द्रप्रसाद में अपनी मातृभूमि की सेवा करने की उत्कट अभिलाषा थी और उन्होंने इसे सच कर दिखाया । आपके भाई इस प्रार्थना को स्वीकार करने में

असमर्थ रहे और एक आज्ञाकारी छोटे भाई की तरह उन्होंने अपने बड़े भाई के आदेश को शिरोधार्य किया और उक्त संस्था में सम्मिलित होने के लिए पूना नहीं गये।

राजेन्द्रप्रसाद का जन्म ३ दिसम्बर सन् १८८४ में हुआ था। उनका जन्म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लगभग एक वर्ष पूर्व हुआ था। आपके पिता का नाम मुंशी महादेवसहाय था, जो जमींदार थे। राजेन्द्रप्रसाद अपने माता-पिता के पांचवें और सबसे छोटे लड़के थे। आप बहुत ऊंचे कायस्थ खानदान में पैदा हुए थे। उन दिनों उनके गांव में ऐसी मान्यता थी कि जो शराब पियेगा वह कोढ़ी हो जायेगा। राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके परिवार के किसी सदस्य ने शराब नहीं पी और इस परम्परा का निर्वाह किया।

राजेन्द्रप्रसाद सन् १८९३ में छपरा में एक स्कूल में दाखिल हुए। सन् १९०२ में कलकत्ता विश्वविद्यालय की एन्ट्रेंस (प्रवेशिका) परीक्षा में सर्व प्रथम आये। वह सर्वप्रथम बिहारी छात्र थे जिन्हें यह विशिष्ट सफलता मिली। बिहार की तत्कालीन प्रमुख मासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तान रिव्यू' ने राजेन्द्रप्रसाद की प्रतिभा से प्रभावित होकर लिखा—"तरुण राजेन्द्र हर प्रकार से एक प्रतिभाशील छात्र है। आशा है कि वह विश्वविद्यालय में अपनी पूर्ण सफलता के उच्च स्तर को बनाये रखेगा और एक दिन आयेगा जब वह प्रांत के हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय) में न्यायाधीश का पद सुशोभित करेगा।" यह भविष्यवाणी अवश्य ही सच निकलती, अगर राजेन्द्रप्रसाद गांधी जी के प्रभाव में आकर राजनीतिक आन्दोलन में न कूदते। वकालत से उनकी आमदानी बहुत अच्छी थी और सारे वकीलों में उनके प्रति बहुत अधिक सम्मान था। आपके निर्मल चरित्र और ईमानदारी से सभी प्रभावित थे। उन्होंने बहुत पैसा कमाया परन्तु आय का अधिकांश वह गरीबों, जरूरतमंदों और लोकहित के कार्यों को आर्थिक सहायता देने में खर्च

कर देते थे। जब वकालत छोड़कर वह असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए उस समय उनके पास बैंक में केवल १५ रु० बाकी बचे थे।

सन् १६०६ में उन्होंने बी० ए० पास करके एम० ए० में अंग्रेजी ली और प्रत्येक परीक्षा में सर्वप्रथम रहे। वकालत आरम्भ करने से पहले आप मुजफ्फरपुर में कुछ समय तक प्रोफेसर (महाविद्यालय में अध्यापक) रहे। राजेन्द्र बाबू जब ५ वीं कक्षा में पढ़ते थे तभी १२ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह कर दिया गया था। उस समय उन्हें विवाह के वास्तविक महत्व का कुछ भी ज्ञान नहीं था जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है और अपने विवाह के समय की मनोरंजक घटनाओं का सजीव वर्णन किया है।

चम्पारन आंदोलन ने बिहार और राजेन्द्रप्रसाद का नाम सभी की जबानों पर ला दिया। ब्रिटिश अत्याचारों के शिकार नील की खेती करने वालों की तरफ से गांधी जी के नेतृत्व में चम्पारन में आन्दोलन शुरू हुआ। आंदोलन सफल रहा और ब्रिटिश सरकार को घुटने टेकने पड़े। जनता को विजय मिली और गांधी जी को मिले राजेन्द्र-प्रसाद, जो आगे चलकर गांधी जी के प्रमुख सहयोगी बने। स्वर्गीय श्री सत्यमूर्ति ने राजेन्द्रप्रसाद की प्रशंसा में लिखा था कि "भारत में उनकी कोटि के बहुत कम व्यक्ति हैं और यदि भारत के राजनीतिक जीवन का उत्तराधिकार आवश्यक समझा गया तो मेरा ख्याल है कि महात्मा गांधी का अगर कोई उत्तराधिकारी बन सकता है तो वह राजेन्द्रप्रसाद के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता।"

राजेन्द्रप्रसाद कांग्रेस के कई बार अध्यक्ष रहे थे और उसके महामंत्री के पद पर भी काम किया था। जब आप कलकत्ता में पढ़ते [illegible] सन् १६०६ के २२ वें कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित [illegible] द ने एक स्वयंसेवक के रूप में अधिवेशन में कार्य [illegible] वह सन् १६३४ में सर्वसम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष चुन

गये। बाद में जब कभी भी कोई कठिनाई पैदा हुई तो उसे दूर करने के लिए आपका सहयोग लिया गया। त्रिपुरा कांग्रेस के बाद सभी की आँखें उन्हीं की ओर लगीं और एक लम्बे गरम वाद विवाद के बाद उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। वह कांग्रेस महासमिति के सन् १९१२ से और कार्य समिति के सन् १९२२ से राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के पूर्व तक बराबर सदस्य रहे। स्क्तंत्रता प्राप्ति के बाद आप भारत सरकार के खाद्य मंत्री बनाए गए। वह संविधान सभा क अध्यक्ष चुने गए। उन्हें सभी का विश्वास और सम्मान प्राप्त था। उन्होंने जर्मनी, इटली आदि बहुत से देशों की यात्रा की। आस्ट्रिया के ग्रेज नगर में शांतिवादी सम्मेलन मे राजेन्द्रप्रसाद ने अहिंसात्मक प्रतिरोध के बारे मे भारतीय दृष्टिकोण रखना चाहा था परन्तु फासिस्त गुडों ने सम्मेलन की सभा में मार-पीट मचा दी जिससे राजेन्द्रप्रसाद को गहरी चोटें आयी।

राजेन्द्रप्रसाद जबर्दस्त संगठनकर्ता थे और संगठन करने की उनकी शक्ति की परीक्षा बिहार भूकम्प के समय हुई। जेल में जब आप बहुत बीमार पड़ गए तो उन्हें दवा कराने के लिए रिहा कर दिया गया था। भूकम्प ने बिहार को बरबाद कर डाला था। पीड़ितों की चीखों से आप तिलमिला उठे। अपने गिरे स्वास्थ्य की परवाह न कर तन, मन, धन स सहायता कार्य में जुट गये। आपने भूकम्प पीडितों की जो महान् सेवा की थी, उसकी सारे देश मे प्रशसा हुई। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में राजेन्द्रप्रसाद के बारे में लिखा है—"किसी भी प्रान्त में किसी को नेतृत्व की ऐसी मान्यता नहीं प्राप्त है जैसी राजेन्द्रप्रसाद को मिली है। राजेन्द्रप्रसाद के अलावा बहुत ही कम ऐसे व्यक्ति हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि गांधी जी के संदेश को उन्होंने पूर्ण रूप से अपनाया है। यह सौभाग्य की बात थी कि बिहार से सहायता कार्य के लिए नेतृत्व करने के लिए उनके ऐसा व्यक्ति मिला। उन्हें अपनी शक्ति से अधिक काम करना

पड़ा क्योंकि प्रत्येक कार्य के यही सचालक थे और प्रत्येक व्यक्ति सलाह लेने के लिए उन्हीं के पास दौड़ता था ।"

राजेन्द्रप्रसाद बहुत अच्छे साथी थे । उनके चेहरे पर कुछ ऐसी आध्यात्मिक कांति थी जो प्रेरणा और साहस प्रदान करती थी । वह कभी भी पदों के इच्छुक नहीं रहे, परन्तु ऊंचे पद उनके चरणों पर गिरते थे और वह कर्तव्य समझ कर उनको सम्भालते थे । वह अत्यन्त उदार हृदय और क्षमाशील थे । विश्वास की ज्योति सदैव उनके हृदय में जलती रहती थी । उनके स्वभाव में उग्रता और तीक्ष्णता का नाम निशान नहीं था । उन्होंने अपने गुरू महात्मा गांधी का पूर्ण रूप से अनुसरण किया और जब कभी उनसे मतभेद भी हुआ तब भी राजेन्द्र-प्रसाद ने उनकी बात को स्वीकार किया, क्योंकि आपको यह विश्वास था कि बापू को गलती न करने की आदत थी ।

स्वर्गीया श्रीमती सरोजिनी नायडू ने राजेन्द्रप्रसाद के बारे में लिखा था कि "बाबू राजेन्द्रप्रसाद के भव्य व्यक्तित्व के बारे में स्वर्ण लेखनी को मधु में डुबोकर लिखना होगा । उनकी असाधारण प्रतिभा, उनके स्वभाव का अनोखा माधुर्य, उनके चरित्र की विशालता और आत्मत्याग के गुण ने शायद उन्हें हमारे सभी नेताओं से अधिक व्यापक और व्यक्तिगत रूप से प्रिय बना दिया है । सच्ची श्रद्धांजलि के रूप में मैं इससे अधिक क्या कह सकती हू कि गांधीजी के निकटतम शिष्यों में उनका वही स्थान है जो ईसा मसीह के निकट सेंट जॉन का था ।"

राजेन्द्रप्रसाद की एक शानदार हस्ती थी । वह भारत के पहिले राष्ट्रपति थे । उनके देशवासी उनका बड़ा सम्मान करते थे और जो लोग उनसे मिलते थे उन्हें बड़ी खुशी होती थी । वह अपने देश के एक महान् नेता थे और जनता की सेवा को वह अपना मजहब समझते थे । देश सेवा के बदले वह कुछ नहीं चाहते थे परन्तु उन्हें जनता ने बड़े पद पर बिठाया और उसे अपना सौभाग्य समझा ।

सरदार वल्लभ भाई पटेल

सरदार वल्लभ भाई पटेल अपने युग के एक महान पुरुष थे। वह गांधी जी के अनन्य भक्त और एक बडे सेनानी थे। वह मनुष्यों को पुस्तकों की भांति पढते थे और उन्हें समझने की कोशिश करते थे।

पड़ा क्योंकि प्रत्येक कार्य के वही संचालक थे और प्रत्येक व्यक्ति सलाह लेने के लिए उन्ही के पास दौड़ता था।"

राजेन्द्रप्रसाद बहुत अच्छे साथी थे। उनके चेहरे पर कुछ ऐसी आध्यात्मिक कांति थी जो प्रेरणा और साहस प्रदान करती थी। वह कभी भी पदो के इच्छुक नही रहे, परन्तु ऊंचे पद उनके चरणों पर गिरते थे और वह कर्त्तव्य समझ कर उनको सम्भालते थे। वह अत्यन्त उदार हृदय और क्षमाशील थे। विश्वास की ज्योति सदैव उनके हृदय में जलती रहती थी। उनके स्वभाव में उग्रता और तीक्ष्णता का नाम निशान नहीं था। उन्होने अपने गुरू महात्मा गांधी का पूर्ण रूप से अनुसरण किया और जब कभी उनसे मतभेद भी हुआ तब भी राजेन्द्र-प्रसाद ने उनकी बात को स्वीकार किया, क्योंकि आपको यह विश्वास था कि बापू को गलती न करने की आदत थी।

स्वर्गीया श्रीमती सरोजिनी नायडू ने राजेन्द्रप्रसाद के बारे में लिखा था कि "बाबू राजेन्द्रप्रसाद के भव्य व्यक्तित्व के बारे में स्वर्ण लेखनी को मधु में डुबोकर लिखना होगा। उनकी असाधारण प्रतिभा, उनके स्वभाव का अनोखा माधुर्य, उनके चरित्र की विशालता और आत्मत्याग के गुण ने शायद उन्हें हमारे सभी नेताओं से अधिक व्यापक और व्यक्तिगत रूप से प्रिय बना दिया है। सच्ची श्रद्धांजलि के रूप में मैं इससे अधिक क्या कह सकती हूं कि गांधीजी के निकटतम शिष्यों में उनका वही स्थान है जो ईसा मसीह के निकट सेंट जान का था।"

राजेन्द्रप्रसाद की एक शानदार हस्ती थी। वह भारत के पहिले राष्ट्रपति थे। उनके देशवासी उनका बड़ा सम्मान करते थे और जो लोग उनसे मिलते थे उन्हें बड़ी खुशी होती थी। वह अपने देश के एक महान् नेता थे और जनता की सेवा को वह अपना मकसद मानते थे। देश सेवा के बदले वह कुछ नहीं चाहते थे
ने बड़े से बड़े पद पर बिठाया और

सरदार पटेल का जन्म ३१ अक्टूबर सन् १८७५ में गुजरात के खेड़ा जिले में हुआ था। उनके पिता ने सन् १८५७ में स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया था। वल्लभ भाई अपने बाल्यकाल में अपने शिक्षकों तथा दूसरों के लिए सिरदर्द बने रहते थे। उनकी विद्रोही भावना का दमन करना कठिन था। वह भावना क्रियाशीलता के लिए छटपटाती रहती थी। सरदार इंगलैंड गए तथा वहां से बैरिस्टर बनकर लौटे। उनकी वकालत अच्छी चलती थी। उन्हें न्यायाधीशों तथा सहकर्मियों का सम्मान प्राप्त था। वह गांधी जी के सम्पर्क में सन् १९१६ में आए। तब से उन्होंने गांधी जी का अनुगमन पूर्णतः, एक प्रकार से अंधानुकरण किया, क्योंकि उन्हें उनकी अचूक निर्णयशक्ति में पूर्ण विश्वास था। गांधी जी को भी सरदार के प्रति आस्था और उनके संगठन शक्ति में पूर्ण भरोसा था। सरदार ने जब सन् १९२८ में ऐतिहासिक बारदोली सत्याग्रह का सफल नेतृत्व किया तब उनकी जोरों से धाक बंधी थी। पंडित नेहरू के शब्दों में, यह संघर्ष ऐसी वीरता के साथ चलाया गया कि शेष भारत ने इसकी प्रशंसा की। बारदोली के किसानों को काफी सफलता मिली। इस आन्दोलन की वास्तविक सफलता इस बात में थी कि इसने देश भर के किसानों को प्रभावित किया। बारदोली भारतीय जनता की आशा, शक्ति और विजय का चिन्ह तथा प्रतीक बन गया।

गांधी जी की मृत्यु के बाद सरदार का दिल टूट गया। उनकी मौत ने उनको बड़ा धक्का पहुंचाया। वह बापू के बिना जीना निरर्थक समझते थे। ७५ वें वर्ष गांठ के अवसर पर उन्होंने कहा था, "मैं कुछ साल और जीना चाहता हूं क्योंकि मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि मैं वहीं चला जाऊं जहां गांधी जी, कस्तूरबा और महादेव देसाई गए हैं। अब मैं जो इसलिए रहा हूं कि जो काम वह लोग अधूरा छोड़ गए हैं, उसे पूरा करूं।"

सरदार अपने शत्रुओं के लिए आतंक तथा मित्रों के लिए सहारा

ह अपने साथियों का पूर्ण विश्वास करते थे और उनसे काम लेना ानते थे। वह सादगी का जीवन विताते थे और अनुशासन में उनका ड़ा विश्वास था। अनुशासनहीनता उन्हें बिल्कुल पसन्द न थी। उन्होंने आजादी के बाद करीब ५०० रजवाड़ों की समस्या को बड़ी योग्यता से सुलझाया और भारत की एकता को भग न होने दिया।

पटेल कठोर दलीय सूत्रधार और दृढ़ संकल्पशील संघटनकर्त्ता के रूप में विख्यात थे। उनके नाम से ही देश और विदेश में दृढ़ता और निर्ममता का बोध होता था। इससे वह कुछ अलोकप्रिय हो गए थे क्योंकि अनुशासन अधिकांश लोगों के लिए असुविधाजनक होता है। जब के० एफ० नरीमेन और एन० बी० खरे के विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई की गई तथा सरदार ने सुभाषचन्द्र बोस का विरोध किया तब उनकी (सरदार की) अलोकप्रियता चरम सीमा पर पहुंच गई थी। उस समय यदि मतदान लिया गया होता तो पटेल भारत के सबसे अवांछनीय व्यक्ति घोषित होते। सौभाग्य या दुर्भाग्य से कांग्रेस कार्य समिति के ऐसे सब निर्णय के लिए जो अनुचित समझे जाते थे सरदार ही दोषी ठहराये जाते थे।

गांधी जी सरदार पटेल को बहुत मानते थे और उनकी बहादुरी की बड़ी प्रशंसा करते थे। एक बार गांधी जी सरदार पटेल के साथ १६ महीने जेल में रहे। जेल से छूटने के बाद गांधी जी ने सरदार की प्रशंसा करते हुए कहा, "सरदार वल्लभ भाई पटेल की संगति में आना मेरे लिये अच्छा था। मैं उनकी अनुपम वीरता से अवगत था, पर मुझे उनके साथ रहने का ऐसा अवसर नहीं मिला था जैसा इन १६ महीनों में मिला। मुझ पर वह जैसा स्नेह रखते थे, उससे मुझे अपनी मां का स्नेह स्मरण हो आता था। मुझे उनके मातृयोचित गुणों का ज्ञान ही नहीं था। यदि मुझे कुछ भी हो जाता तो वह फिर स्वयं आराम न करते। मेरी सुविधाओं का बारीकी के साथ खुद इंतजाम करते।"

सरदार पटेल का जन्म ३१ अक्टूबर सन् १८७५ मे गुजरात के खेड़ा जिले में हुआ था। उनके पिता ने सन् १८५७ में स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया था। वल्लभ भाई अपने बाल्यकाल मे अपने शिक्षकों तथा दूसरों के लिए सिरदर्द बने रहते थे। उनकी विद्रोही भावना का दमन करना कठिन था। वह भावना क्रियाशीलता के लिए छटपटाती रहती थी। सरदार इगलैंड गए तथा वहां से बैरिस्टर बनकर लौटे। उनकी वकालत अच्छी चलती थी। उन्हें न्यायाधीशों तथा सहकर्मियों का सम्मान प्राप्त था। वह गांधी जी के सम्पर्क मे सन् १९१६ में आए। तब से उन्होंने गाधी जी का अनुगमन पूर्णत., एक प्रकार से अंधानुकरण किया, क्योंकि उन्हें उनकी अचूक निर्णयशक्ति में पूर्ण विश्वास था। गांधी जी को भी सरदार के प्रति आस्था और उनके संगठन शक्ति में पूर्ण भरोसा था। सरदार ने जब सन् १९२८ में ऐतिहासिक बारदोली सत्याग्रह का सफल नेतृत्व किया तब उनकी जोरों से धाक बंधी थी। पंडित नेहरू के शब्दों में, यह संघर्ष ऐसी वीरता के साथ चलाया गया कि शेष भारत ने इसकी प्रशंसा की। बारदोली के किसानों को काफी सफलता मिली। इस आन्दोलन की वास्तविक सफलता इस बात में थी कि इसने देश भर के किसानों को प्रभावित किया। बारदोली भारतीय जनता की आशा, शक्ति और विजय का चिन्ह तथा प्रतीक बन गया।

गांधी जी की मृत्यु के बाद सरदार का दिल टूट गया। उनकी मौत ने उनको बड़ा धक्का पहुंचाया। वह बापू के बिना जीना निरर्थक समझते थे। ७५ वें वर्ष गांठ के अवसर पर उन्होंने कहा था, "मैं कुछ साल और जीना चाहता हूं गोकि मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि मैं वहीं चला जाऊं जहा गांधी जी, कस्तूरबा और महादेव देसाई गए हैं। अब मैं जो इसलिए रहा हूं कि जो काम यह लोग अधूरा छोड़ गए हैं, उसे पूरा करूं।"

सरदार अपने शत्रुओं के लिए आतंक तथा मित्रों के लिए सहारा

थे। इस महान् सेनानी ने अपनी जनता की नितान्त सच्चाई और ईमानदारी से सेवा की। यह शक्तिशाली नेता अपने देशवासियों के लिए शक्ति स्तम्भ था। वह कभी डिगा नहीं, झुका नहीं। वह अपने मन को अच्छी तरह जानते थे और समयानुसार तथा विधि अनुसार कार्य करना जानते थे। जब वह बहुत अस्वस्थ थे तब भी वह अपने उच्च और भारी उत्तरदायित्वों से घबड़ाते नहीं थे। जब वह पूर्ण विश्राम और चिकित्सा के लिए बम्बई पहुंचाए गए तब भी अपने साथ कुछ महत्वपूर्ण कागज पत्र (फाइलें) काम के लिए साथ लेते आए। बम्बई में उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और १५ दिसम्बर सन् १९५० को उन्होंने अंतिम सांस ली। जब कभी देश पर संकट आता है तो लोग कहते हैं, "यदि आज सरदार जिन्दा होते—" लोगों का उनमें बड़ा विश्वास था और वह जानते थे कि वह उनको हिम्मत और योग्यता से रहनुमाई करते थे।

भारत के लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल को समझने के लिए यह आवश्यक नहीं था कि आपका उनसे निकट परिचय होता। आपको केवल उनके चेहरे पर ध्यान देना था। उनके चौड़े जबड़े, दृढ़ मुद्रा और जोरदार आंखें आप पर रोब जमा देती। वह देर तक वादविवाद नहीं करते थे, अधिक समझाते भी नहीं थे। वह लोगों की बातें सुनते थे, निर्णय करते थे और उसे कार्यान्वित करते थे। उनका दृढ़ मुख, गालों की ऊंची हड्डियां और जबड़े की दृढ़ रेखाएं यह प्रकट करती थी कि वह कर्मवीर थे। उनकी भारी पलकों से कुछ झंपी आंखें किंचित् गोपनीयता इंगित करती थी। वह ऐसे पुरुष थे जो कोई दुराव नहीं रखते थे। यदि कोई कुछ क्षण उनकी ओर देखता तो उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। उनकी उपस्थिति से जनता में विश्वास तथा शक्ति बढ़ती थी। कार्य शीलता उनके चेहरे पर अंकित थी और लेनिन और तिलक के मिश्रित चेहरों की छाप सी दिखाई पड़ती थी। उस पर विद्रोह और असमझौता वादी

स्पष्ट अंकित थी। आप यह तुरन्त अनुभव कर सकते थे कि
काल में उनके साहसपूर्ण नेतृत्व पर भरोसा किया जा सकता था।
अगस्त सन् १९४२ में जब बम्बई में ऐतिहासिक "भारत छोड़ो"
व पर विचार हो रहा था तब मैं ने पटेल को ब्रिटिश सरकार के
ाफ आग उगलते, व्यंग वाण छोड़ते और घृणा व्यक्त करते हुए देखा।
गन में पत्रकारों की पंक्ति में कुछ विदेशी संवाददाता भी बैठे
इस देश के लिए नए थे। वे श्रोताओं द्वारा पटेल के भाषण पर
ई गगन भेदी हर्षध्वनि पर आश्चर्य चकित थे। उनमें से एक ने
"लोग जोरों की करतलध्वनि क्यों कर रहे हैं? क्या यह मिस्टर
हैं?" विदेशी संवाददाता को बताया गया कि "यह गाधी नही,
हैं।" "क्या यह वही पटेल हैं जो कांग्रेस दलके निर्मम सूत्रधार
र जिनकी जॉन गुन्थर ने जिम फार्ले से तुलना की है?" "हां
" मैं ने कहा।

सरदार के कठोर और रुक्ष बाह्य आवरण से ऐसा लगता था कि
हृदयहीन थे। पर इस कठोर पुरुष का, जो कार्य लेना जानता था
कठोरता से कार्य करता था, अभ्यन्तर बड़ा कोमल था। वह
दयावान थे और कभी कभी बड़े कोमल हृदय का परिचय देते थे।
मित्रों का कहना है कि उनसे सच्चे मित्र और विश्वसनीय साथी
मिलना कठिन था।

वह काम करने में विश्वास रखते थे। जो भी काम वह हाथ में
थे उसे पूरा कर दिखाते थे। वह अपने रास्ते पर अटल रहते थे
कितना भी संकट हो हिम्मत नहीं हारते थे। उन्हें अपने में विश्वास
अपने देश पर विश्वास था और अपने नेता में विश्वास था।
स उनका मंदिर था और गाधी उनके देवता थे। देश की आजादी
लिए उन्होंने बड़ी बहादुरी से लड़ाई लड़ी और देश स्वतंत्र होने के
उन्होंने देश के शासन का भार सम्भाला। उनकी देश सेवाएं
भुलाई नही जा सकती। वह अपनी मातृभूमि के सच्चे सेवक थे।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

जॉर्ज इलियट ने कहा है कि इन्सान को मजहब और राजनीति में दिलचस्पी बेहद रहती है। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद को इन दोनों में ही बड़ी गहरी दिलचस्पी थी। उनके पिता खलीलउद्दीन का विश्वास पश्चिमी शिक्षा में बिलकुल नहीं था और उन्होंने अपने बेटे को किसी अग्रेजी स्कूल में भरती नहीं कराया। १९०८ में जब आज़ाद के पिता का देहान्त हो गया तो उन्होंने आधुनिक शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। उन्होंने सर सैयद अहमद खां के लेखों को पढ़ा जिसमें अग्रेजी और विज्ञान पढ़ने पर जोर दिया गया था। आज़ाद
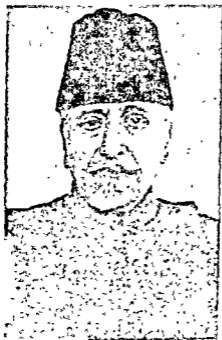
ने एक अग्रेजी की ग्रामर और डिक्शनरी खरीदी और अपने आप ही अच्छी खासी अग्रेजी सीख ली। कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपना तखल्लुस "आज़ाद" रक्खा। वह क्रान्तिकारियों से भी मिलते थे और उनकी मदद करते थे। गाधी जी जिस समय चम्पारन में एक आन्दोलन चला रहे थे तब उन्होंने आज़ाद से मिलने की ख्वाहिश ज़ाहिर की थी परन्तु

उनको आज़ाद से मिलने की इजाजत नहीं मिली । गांधी और आज़ाद की पहली मुलाकात सन् १६२० में हुई ।

आज़ाद जब कांग्रेस में आये तभी से उनकी धाक बध गयी। सन् १६२३ में जब वह पैंतीस साल के ही थे तभी वह कांग्रेस के राष्ट्र-पति चुने गये । उसके बाद वह कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य मरते दम तक रहे । कांग्रेस के राष्ट्रपति वह फिर चुने गये और कई बार जेल गए । स्वराज्य होने के बाद मौलाना शिक्षा मंत्री हुए । कांग्रेस के कामों में उनकी हमेशा दिलचस्पी रही । कांग्रेस की कठिन समस्याओं को सुलझाने में और कांग्रेस वालों के झगड़े निपटाने में मौलाना बड़े माहिर थे और इन कामों में बड़ी दिलचस्पी लेते थे । वे कैबिनेट की बैठक में कभी कभी गैरहाजिर हो जाते थे मगर कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में जहां तक मुमकिन होता था मौजूद रहते थे । वह बिना दूध की चाय और समोसे के बहुत शौकीन थे और मीटिंगों में भी ये चीजें अपने साथ लेकर जाते थे ।

१६४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन में मौलाना गिरफ्ता किए गए, नैनी जेल में रक्खे गये और उनपर मुकदमा चलाया गया ऐंग्लो इण्डियन मजिस्ट्रेट एन्थनी ने उनका मुकदमा नैनी जेल में किया मुकदमे के दौरान में आज़ाद का नाम और उनके बाप का नाम पूछ गया । जब मजिस्ट्रेट ने उनसे यह पूछा कि उनका पेशा क्या है त मौलाना ने मुस्करा कर और मूछ पर हाथ फेर कर कहा, "मैं आपक क्या बताऊं ।" जो लोग वहां खड़े थे सब हंस पड़े और मजिस्ट्रेट साह ने फिर उस सवाल को नहीं दोहराया ।

मौलाना शाही तबियत के आदमी थे। वह लोगों से ज्यादा मिलन जुलना पसंद नहीं करते थे । जब वह शिक्षा मंत्री थे तब वह अप ठंडे कमरे में बैठे रहते थे, वहीं काम करते थे और ज्यादातर जो लो उनसे मिलने आते थे उनसे आज़ाद यही कहते थे कि वह अपना का लिख कर दे दें । वह गर्मी के दिनों में भी अक्सर ही कभी शाम

बैठते हों। वह ठंडे कमरे को ही पसंद करते थे। किसी भी तरह की वर्जिश मौलाना नहीं करते थे। वह बहुत से लोगों के साथ मेज में बैठकर खाना पसन्द नहीं करते थे। जब वह लन्दन गये थे तब भी उन्होंने अपना खाना अपने कमरे में ही मंगवाया था जिसके लिए उन्हें काफी पैसा देना पड़ा।

एक बार मौलाना कश्मीर में चश्मशाही अतिथि गृह में ठहरे हुए थे। कश्मीर सरकार ने उसमें दो तीन दिन के बाद एक और मंत्री को भी ठहरा दिया। जब मौलाना को यह बात बताई गई तो उन्होंने अपना सब सामान वगैरह बंधवा लिया और वहां से जाने का तय किया। कश्मीर छोड़ने से पहले उन्होंने वहां के मुख्यमंत्री को बुलाया और कहा, "जनाब, अब मुझे आप रुखसत दीजिए।" मुख्य मंत्री जी हैरत में हो गये कि क्या गलती हो गई है जिससे मौलाना अचानक जाने के लिये तैयार हो गये। उन्होंने जब कई बार मौलाना की नाराजगी की वजह पूछी तो उन्होंने कहा, "आपको तो मालूम है कि मैं जवाहरलाल के अलावा और किसी के साथ नहीं रह सकता फिर भी आपने किसी और आदमी को यहां ठहरा दिया।" मुख्यमंत्री ने "गुस्ताखी" के लिए माफी मांगी और दूसरे मंत्री जी को एक बंगले में भेज दिया।

आजाद एक बहुत सच्चे दोस्त थे। उनके दिल में दोस्ती का बहुत ऊंचा स्थान था। कभी कभी वह दोस्तों को अपने रिश्तेदारों से कहीं ज्यादा मानते थे। उनके दिल में जवाहरलाल जी के लिये बहुत इज्जत थी। वह उनके साथ ही अहमदनगर के किले में गिरफ्तारी के दौरान में रहे थे। जब जवाहरलाल, कृष्णमेनन को मंत्रिमण्डल में लेना चाहते थे आजाद इसके बिलकुल खिलाफ थे। बार बार नेहरू, मौलाना से इसरार करते थे कि वह मेनन के सरकार में आने को राजी हो जायें लेकिन आजाद यही कहते थे, "नहीं, मेरे भाई यह बात मुझे मंजूर नहीं है।" एक बार तो उन्होंने यहां तक कह

दिया कि उनको छुट्टी दी जाय और मेनन को ले लिया जाये। यह जवाहरलाल जी कैसे कर सकते थे! कई महीने के बाद मौलाना दोस्ती के नाते जवाहरलाल जी की बात मान गये और तब मेनन मंत्री मण्डल में शरीक हो गए।

मौलाना लगातार सिगरेट पीते रहते थे और चाय पीना बहुत पसन्द करते थे। एक बार उनके पुराने दोस्त राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने ईद के दिन मौलाना साहब के बंगले पर जाकर "ईद मुबारक" कहने का इरादा किया। आजाद को पहिले से खबर दी गई। आजाद ने कहलाया कि राजेन्द्र बाबू से कह दो कि पुराने दोस्त हैं उन्हें तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं। इस तकल्लुफ में क्या रक्खा है। राष्ट्रपति भवन के अफसरान हक्के बक्के रह गये। वह "प्रोटोकाल" के मुताबिक काम करना चाहते थे। उन्होंने कभी यह नहीं सुना था कि राष्ट्रपति किसी मंत्री के घर जाना चाहे और वह आनाकानी करें। आजाद साहब को जब यह बताया गया तो वह राजी हो गये कि राजेन्द्र बाबू तशरीफ लायें। ऐसा ही हुआ। और उन्होंने मौलाना के घर जाकर उनको "ईद मुबारक" कहा।

मौलाना अबुल कलाम आजाद के चेहरे पर शहन्शाहत की झलक थी और उनके तर्जो तरीकों से बादशाहत टपकती थी। छोटी सी उमर में ही उन्होंने बहुत से कमाल कर दिखाये और बड़ा नाम कमाया था। उनके पिता १८५७ के गदर के बाद, जब कि अंग्रेज लोग खासतौर दिल्ली के रहने वाले मुसलमानों को बुरी तरह से सता रहे थे, हिन्दुस्तान छोड़कर मक्का चले गये थे। आजाद के पिता हिन्दुस्तानी थे लेकिन उनकी मां अरब की थी। वह सिर्फ अरबी बोलती थी और आजाद बहुत अच्छी तरह अरबी भाषा बोल लेते थे। उर्दू, फारसी फिलोसफी इत्यादि का मौलाना ने बहुत अच्छी तरह से अध्ययन बचपन में ही किया था, और छोटी सी उमर में ही जब वह पढ़ते थे तभी उनको पढ़ाने का काम भी दिया गया था।

आजाद का जन्म मक्का में ११ नवम्बर सन् १८८८ में हुआ था। ये बात बिलकुल गलत है कि उन्होंने कैरो में अलअजर विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। इसे अक्सर बहुत से लोगों ने लिखा है। वाकया यह था कि उनके वालिद ने उन्हें कैरो भेजा अवश्य था मगर उन्होंने वहां किसी विश्वविद्यालय से तालीम नहीं पाई।

जब आज़ाद १५ ही साल के थे तभी उन्होंने कई विषयों में महारत हासिल कर ली थी। ज्यादातर उनकी तालीम उनके घर में ही हुई थी, और कुछ उन्होंने कलकत्ता के मकतबों से पढ़ा था जहां वह पांच साल की उमर में आ गये थे। उनके पिता एक बहुत भारी विद्वान थे और उनका भी बड़ा नाम था। वह और आज़ाद दोनों मुसलमानों में पूजे जाते थे। आज़ाद को तो पीर की भी पदवी देने को कहा गया था और ये जानते हुए कि उसमें कितना सम्मान और लाभ है उन्होंने इस पद को लेने से इन्कार कर दिया।

जब पहली लड़ाई १६१६ में हुई थी तो गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया था परन्तु आज़ाद उस वक्त भी बगावत का झण्डा उठाये हुए थे। जब वह करीब बीस साल के थे तभी उन्होंने एक अखबार "अल हिलाल" निकाला था। उसकी दो साल में ही छब्बीस हजार कापियां बिकने लगी थीं और पत्रकारिता की दुनिया में उसका बड़ा ऊंचा स्थान था। यह अखबार अंग्रेजों के खिलाफ आग उगलता था, भारतीय आज़ादी का प्रतीक था और बगावत का खज़ाना था। इस अखबार का प्रचार दिन दूना और रात चौगुना होने लगा और सरकार को एक बहुत भारी परेशानी हो गई। उसकी कई बार ज़मानत ज़ब्त की गई और मौलाना को कई साल तक नज़र-बन्द रक्खा गया।

आज़ाद जब केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्री थे तो विश्वविद्यालयों के अधिकारी उनसे दीक्षान्त भाषण देने का आग्रह करते थे, परन्तु उन्होंने कभी किसी विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण नहीं दिया।

वह निवेदन करने वालों से यही कहते थे, "मेरे भाई, (यह उनका तकिया कलाम था) जब मैं शिक्षा मन्त्री न रहू तब अगर आप कहोगे तो मसला गौर तलब होगा।" वह अपनी शान के निराले आदमी थे। जिन लोगों का उनसे बहुत निकट का सम्पर्क रहा है उन्होंने मुझे बताया कि वह जवाहरलाल को बहुत चाहते थे और इज्जत करते थे मगर कभी उनके घर जाकर उनको उनकी सालगिरह पर बधाई नही देते थे। जब कि बड़े से बड़े आदमी नेहरू को इस अवसर पर मुबारकबाद देने उनके घर जाते थे।

"अल हिलाल" मे छपे हुए मजमूनो ने आजाद की काबिलियत का डका सारे देश में जोरों से पीट दिया था। मुसलमानो की एक बड़ी जमात ने लाहौर मे १६०४ मे इस काबिल पत्रकार को अपने सालाना जलसे में तकरीर करने की प्रार्थना की गोकि उन लोगो ने कभी आजाद को देखा नही था। इस जलसे में बड़े बड़े काबिल मौलवी आये थे। उसमे शायर हाली, शेख मुहम्मद इकबाल, बड़े लेखक नजीर अहमद वगैरा मौजूद थे। जब आजाद जलसे में पहुंचे तो लोगों को यह देख कर हैरत हुई कि करीब १६ साल का छोकरा इतने जलसे मे मजहब के इतने कठिन विषय पर तक़रीर करने की हिम्मत करेगा। कुछ लोगों का तो ख्याल हुआ कि यह लड़का "अल हिलाल" अखबार के सम्पादक मौलाना अबुल कलाम आजाद का बेटा है। मगर बाद में उनको बेहद ताज्जुब हुआ कि वह लड़का ही मशहूर मौलाना अबुल कलाम आजाद है। जब उन लोगों ने उनकी तक़रीर सुनी तो उनकी हैरत की इन्तहा न रही। शायर हाली ने वहीं कहा, "इन जवान कंधो पर एक बडा दिमाग है।" उसी दिन से मौलाना की मुसलमानों की दुनिया में बेहद धाक जम गई।

जब मौलाना १४ साल के थे तो शायरी भी करते थे और उसमें भी काफी नाम कमाया। गालिब के चेले नादिर खान को यह यकीन न हो सका कि यह लड़का "आजाद" इतनी अच्छी शायरी खुद कर

सकता है। उनका ख्याल था कि यह कहीं से चोरी करके कविता लिखता है। एक दिन एक किताब की दूकान में आज़ाद पुस्तकें देख रहे थे। उधर से नादिर खान गुजरे और कहा, "जनाब, आप हर मुशायरे में जोरों की कविताएं सुनाते हैं। हम यक़ीन कैसे करें कि इतना छोटा लड़का इतनी शानदार कविताएं लिख सकता है? मेरा तो ख्याल है कि आप के लिए कोई और लिखता है और आप उसे सुना देते हैं। आज मैं आपका यहीं पर इमतहान लूंगा। लीजिए यह तराह है—'याद न हो, शाद न हो, आबाद न हो' अब आप कविता बनाइये।"

आजाद को यह सुनकर बड़ी चोट लगी। उन्होंने अपने गुस्से को कब्जे में किया और वहीं पर जोरदार कविता उसी 'तराह' को लेकर बना डाली और समा बांध दी। नादिर खान साहब यह देख कर हक्के बक्के रह गये, और शर्म हया को छोड कर दूकान में ही नाचने लगे और खुशी से, "सुभान अल्लाह, सुभान अल्लाह" चिल्लाने लगे।

आजाद राजनीति में रहे मगर उनका दिल पढने लिखने की दुनिया में था। उनका खुद का एक बहुत बडा पुस्तकालय था। वह अंग्रेजी बोलते नहीं थे लेकिन अंग्रेजी की बड़ी बड़ी मशहूर किताबें पढते थे। हम उनसे इलाहाबाद में अक्सर मुलाकात करते थे और नेताओं के साथ उन्हें स्टेशन से आनन्द भवन लाने और पहुंचाने जाते थे। एक दिन रेल के डिब्बे में वह एक नई आई हुई अंग्रेजी की किताब पढ़ रहे थे। वह उस दिन इलाहाबाद से गुजर रहे थे। जब उन्होंने मुझे डिब्बे के पास देखा तो बुलाकर कहा, "मेरे भाई, मैं ने सुना है कि तुम भी चुनाव लड़ना चाहते हो। क्या करोगे? पढ़ने लिखने के अच्छे काम में लगे हो इसे छोड़ कर इस जंजाल में क्यों फंसना चाहते हो? मेरे भाई, वैसे जैसी तुम्हारी मरजी।" वह राजनीति में खुद आये इसलिए क्योंकि मुल्क की गुलामी उन्हें मन्जूर न थी, मगर उनका [illegible] हमेशा किताबें पढ़ने और लिखने में रहता था। वह एक बड़े [illegible] लेखक और पत्रकार थे।

सी० राजगोपालाचारी
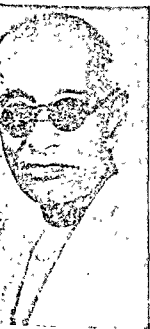
ऐसा मालूम होता है कि राजा जी की बुद्धि और हिम्मत के ऊपर उम्र का कोई असर नही है। जैसे जैसे वे बडे होते जाते है वैसे ही उनकी बुद्धि तीव्र होती जाती है। उनके ऐसे बुद्धिमान नेता देश मे कम है। उन्होने हमेशा अपने उसूलों का पालन बडी कडाई से किया और अपने मुखालिफों का हिम्मत से मुकाबिला करने मे कभी डरे नही। वे वाकई एक महान पुरुष है जिन्होने देश की बडी सेवा की है। जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, "देश में बहुत कम आदमी ऐसे है जिनसे वे जटिल समस्याओं पर बातचीत करना चाहेगे और उन सब में राजा जी का स्थान प्रथम है। राजा जी ने जवाहरलाल जी के लिए कहा है, "दुनिया में कोई ऐसा आदमी नही है जिसको उसके देशवासी इतनी मुहब्बत करते है, जैसी कि जवाहर लाल जी को करते है। उनके देश-वासी उनसे बड़ा प्रेम रखते है। लाखों आदमी उनके कहने पर जान देने को तैयार है।"

यह ताज्जुब की बात है कि राजा जी कभी कांग्रेस के सभापति नही हुए। शायद गाधी जी ने यह समझ लिया था कि वर्किंग कमेटी के मेम्बर उनके साथ चल न सकेंगे। लोग यह समझते है कि वे हर समय चतुराई करते है। चाहे वे कितनी ही सीधी सादी बात कहें, लोगों

"चार वजे काफी कैसे ?" राजा जी ने पूछा ।

"इसलिए कि हम चार वजे काफी पीते हैं", पट्टाभि ने उत्तर दिया ।

"ठीक है, लेकिन क्या तुम्हारे पास ज्यादा दूध भी है ?"

"हां है । हम ज्यादा दूध खरीदते हैं ।"

"लेकिन काफी तो तुमने केवल दो ही के लिए बनाई है ।"

"यह कोई बात नहीं है । अंगीठी जल रही है, पानी गर्म हो रहा है ।"

"लेकिन काफी पाउडर ज्यादा कहां से लाओगे ?"

"अरे भाई, हमारे पास काफी है ।"

"लेकिन तुम्हें तो १ ही औंस मिलती है !"

"यह ठीक है, लेकिन हमारी पत्नी उस दिन एक टिन काफी का दे गई थी ।"

"लेकिन क्या उसे तुम्हें खतम करना चाहिए ?"

"हम और फिर मंगा सकते हैं ।"

"अच्छा, तुम्हारे पास शक्कर है ?"

"हां शक्कर की कोई कमी नहीं है ।"

"यह कैसे ?"

"अगर तुम साबुन की एक टिकिया मांगो तो तुम्हें आध पाव शक्कर भी मिल जाती है ।"

"अच्छा, यह जेल की जुबान है ।"

"हां आप ठीक कहते हैं ।"

"लेकिन तुम्हारे पास ज्यादा प्लेट, प्याले तो हैं नहीं ?"

"जरूर है ! हमारी बीबी पिछले इतवार को नया सेट दे गई है ।"

"अच्छा तो तुम चार बजे शाम को सिर्फ काफी पीते हो ?"

"नहीं हमारे पास खाने के लिए भी चीजें हैं ।"

"तुम्हारे पास क्या क्या है ?"

"हमारे पास लड्डू है, पूरी है, जलेबी है ।"

"लेकिन यह राशन के साथ तो नहीं मिलता है ?"

"नहीं, मेरी बीवी यह सब चीजें लाई थी ।"

"लेकिन यह सब चीजें तुम्हें जल्दी में खत्म नहीं करनी चाहिए ।"

"अरे भाई, यह सब दोस्तों के ही लिए है ।"

इस सब वाद विवाद के बाद सब चीजें राजा जी के सामने पट्टाभि ने रखीं और राजा जी ने जम के खाईं ।

सन् १९४१ में वह इलाहाबाद से होकर गुजरे और मैंने रेलगाड़ी में उनसे भेंट की । मैंने उनको बताया कि उनके भाषणों और वक्तव्यों पर लोग बहुत क्षुब्ध हो रहे हैं । उन्होंने कहा, "इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सही हैं और मैं गलत हूं । इससे केवल यह प्रकट होता है कि वे क्रुद्ध हैं और मैं नहीं हूं । क्रुद्ध व्यक्तियों का निर्णय इतना सही नहीं होता जितना कि उन लोगों का जो कि क्रोध में नहीं हैं ।" मैं तर्क को और आगे न बढ़ा सका और उनकी तरफ गौर से ताकने लगा । वह पूर्णरूप से प्रसन्न तथा विश्वस्त दिखाई पड़ रहे थे ।

वह एक व्यक्ति नहीं वरन् एक शैली हैं । तर्क ही उनका मुख्य आधार है । अपने अकाट्य तर्कों से वह अपने विपक्षियों को नीचा दिखा सकते हैं तथा लोगों में विश्वास पैदा कर सकते हैं, किन्तु कार्य के लिए वह लोगों को उद्यत और अनुप्राणित नहीं कर सकते । उनकी जुबान पर कथाएं हर समय तैयार रहती हैं तथा त्रिपुरी में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर "फूटी हुई नाव वाली" जो कहानी उन्होंने सुनाई थी वह अब तक हमें याद है । यह ब्राह्मण संत, तर्क का एक प्रकान्ड पंडित है, उनकी बौद्धिक सूक्ष्मता अत्यन्त अपूर्व है । कठिन से कठिन तथा अत्यन्त जटिल समस्याओं के लिए उनके पास एक या दूसरा हल हमेशा तैयार रहता है । राजा जी की प्रशंसा करते हुए पंडित नेहरू ने अपनी जीवन कथा में लिखा है, "उनकी तीव्र मेधा, स्वार्थहीन चरित्र तथा विश्लेषण की अपूर्व शक्ति हमारे उद्देश्य के लिए बहुत उपयोगी रही है ।"

अप्रैल १९४२ में कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग आनन्द भवन इलाहाबाद में हुई थी। बहुत से गम्भीर विषयों पर बहस हुई और राजा जी कई मामलों में वर्किंग कमेटी के सदस्यो के खिलाफ थे। राजा जी ने कुछ वक्तव्य दिए थे जिस पर अध्यक्ष को आपत्ति करनी पड़ी थी और राजा जी को वर्किंग कमेटी से इस्तीफा देना पडा था। परन्तु वे अपनी बात पर अड़े रहे। इस इस्तीफे से वर्किंग कमेटी के सदस्यों को बड़ा दुख हुआ। एक सदस्य ने मुझसे कहा था, "राजा जी की बात से हम लोग सहमत नही है लेकिन वर्किंग कमेटी से उनका जाना हम सब को बहुत खला है।" राजा जी ने इस इस्तीफे की कुछ परवाह नहीं की और अपने विचारों को उसके बाद बड़ी हिम्मत से प्रकट किया।

एक मर्तबा राजा जी एक बैलगाड़ी मे अपने घर लौट रहे थे। जिस इलाके से वह गुजर रहे थे वहा बडी बडी डकैतिया होती थी। वह गाड़ी में बड़ी गहरी नीद में सो रहे थे। अचानक एक आदमी लालटेन लेकर उनके पास आया और कहा, "पैसे दीजिए।" राजा जी समझे डाकू आ गए। उन्होंने पिस्तौल चला दिया और एक आदमी जमीन पर गिर पड़ा और खून से लबरेज हो गया। कुछ क्षणों के बाद उन्होंने महसूस किया कि यह तो चुगी का आदमी था। उन्हें बड़ा दुख हुआ और उस दिन उन्होंने कसम खाई कि उस दिन से पिस्तौल ले कर न चलेंगे। उनके ऊपर मुकदमा चला लेकिन वह बहाल किए गए।

राजा जी सुख दुख झेलना जानते है। सुख के समय वह बौखलाते नही। दुख के समय वे घबड़ाते नहीं। देशवासियों ने उनका बड़ा सम्मान किया है और वह बहुत बड़े पदों पर रहे हैं गोकि उनके मुखालिफों की कमी कभी नही थी। यह उनकी देशभक्ति और बुद्धिमता का प्रमाण है। उनमें कुछ आध्यात्मिक शक्ति है जो उनको बल देती है। वह दृढ़ समस्याओं को जल्दी से समझ जाते हैं और फुर्ती से फैसला करते

ो चुनौती देना है। वह चुनाव में जीत गए। १९६७ के चुनाव
में वह फिर हारे लेकिन वह हार मानने वाले कहां! एक बाई
लेक्शन में फिर लड़े और जीते।

कृपलानी जी बड़ी कड़वी तथा तीखी बात करते हैं। उनकी भाषा
तानायुक्त है। इन कारणों से उनके बहुत विरोधी पैदा हो गए हैं।
चाहे कितनी भी मुसीबत में वे फंस जाएं आचार्य जी अपने उसूलों से
कभी नहीं डिगते। सिद्धान्तों पर अटल रहने के कारण वे कई मामलों
में असफल से रहे हैं। साधारणतया इस स्तर के ईमानदार, बुद्धिमान,
साहसी तथा न्यायी पुरुष को भारतीय गणतंत्र का अध्यक्ष या ऐसे ही
किसी अन्य पद पर आसीन होना चाहिए था किन्तु अपने स्वतंत्र स्वभाव
तथा स्वतंत्र विचार धारा के कारण वे ऐसे पदों के निकट तक नहीं
पहुंच सके। एक सफल राजनैतिक को तो समझौते के लिए हमेशा
तैयार रहना चाहिए। किन्तु कृपलानी जी ने अपने सिद्धान्तों को
कुचल कर किसी व्यक्ति या संस्था का साथ नहीं दिया। चाहे कोई भी
परिस्थिति हो वे सत्य के दृष्टिकोण से उसका मूल्यांकन करते हैं। वे
स्पष्टवादी हैं। जो मन में रहता है उसे निडर होकर कह डालते हैं।
इस प्रकार का दृष्टिकोण तो राजनैतिक क्षेत्र में काम करने वालों के
लिए बड़ा ही घातक है। यह देखकर कभी कभी आश्चर्य होता है कि
ऐसा व्यक्ति कैसे राजनीति में अपनी धाक जमाए है।

जब सन् १९१८ में, महामना पंडित मदन मोहन मालवीय कांग्रेस
के अध्यक्ष निर्वाचित हुए तो कृपलानी जी उनके सहकारी बने। सन्
१९१९ में उनको काशी विश्व विद्यालय में इतिहास का अध्यापक
नियुक्त किया गया, पर सत्याग्रह आन्दोलन शुरू होते ही वह उस में
कूद पड़े। जेल से मुक्त होने पर आचार्य नरेन्द्र देव, बाबू श्रीप्रकाश
आदि के साथ कृपलानी जी ने काशी विद्यापीठ का संगठन किया।
उन्होंने वहां पैर जमाए ही थे कि गांधी जी ने उन्हें साबरमती में विद्यापीठ
का कार्य सम्भालने के लिए बुला भेजा। वहां उन्हें आचार्य उपाधि

से सम्बोधित किया जाने लगा। प्रान्तीय कांग्रेस के अधिकारियों से विद्यापीठ के शासन के विषय में उनकी खटपट हुई तो उन्होंने अध्यक्ष पद से पद त्याग कर दिया और रचनात्मक कार्य करने के लिए संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) चले गए।

कृपलानी जी अनेक वर्षों तक कांग्रेस महासमिति के सदस्य और प्रधान सचिव रहे। वह काम लेने में कड़े हैं। अपने अधीनस्थ लोगों को उन्नति की पूरी सुविधा देते हैं। परन्तु निठल्ले लोगों के दिल में आतंक पैदा करते हैं। उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में शायद ही किसी को कभी दंडित किया हो परन्तु कार्यालय के सभी लोग उनसे डरते थे। वे यह जानते थे कि कार्य में किसी प्रकार की उपेक्षा और असावधानी को कृपलानी जी कभी सहन न करेंगे।

कृपलानी जी की जिह्वा में जिस सरस्वती का निवास है उसके कारण उनका कोई भी भाषण साधारण नहीं कहा जा सकता। मीमांसा, वक्रोक्ति और व्यंग का कुछ ऐसा सम्मिश्रण उनके बोलने में रहता है कि सामान्य बातों में भी लोगों को कटोक्ति की गंध मिलती है। उनके ये सब वाह्य आवरण उन गुणों को छिपाए रहते हैं जिनको पारखियों ने पहचाना है और जिसके कारण आज वह राष्ट्र के निर्माताओं में हैं।

कृपलानी जी का जन्म सिन्ध के एक भद्र परिवार में हुआ। उनके भाइयों में से एक सन्यासी हो गया। एक गुप्त राजनैतिक दल में सम्मिलित हो गया और प्रसिद्ध 'रेशमी रूमाल' षड़यंत्र में विख्यात हो गया। अपने कार्यों के सिलसिले में उनको भारत से बाहर जाना पड़ा और तुर्की में उनकी मृत्यु हो गई। एक बार जब कृपलानी जी महाविद्यालय में छात्र थे एक अध्यापक डा० जेक्सन ने कहा, "तुम [illegible]न्धी झूठे हो।" इस कथन से कृपलानी जी के देशाभिमान को [illegible]का पहुंचा। उन्होंने छात्रों को संघठित कर इसका बड़ा विरोध

किया। बाद में कृपलानी और उनके साथियों को वह महाविद्यालय छोड़ना पड़ा। अपने विद्यार्थी जीवन ही में राजनैतिक चेतना जागरूक रहने के कारण उन पर लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द का बड़ा प्रभाव पड़ा। अपने प्रगतिशील विचारों के कारण उन्हें कराची के सिंध महाविद्यालय और वम्बई के विल्सन महाविद्यालय से निकाला गया था।

कृपलानी जी बाहर से बड़े रूखे लगते हैं किन्तु उनका दिल कोमल है। वे हास्य तथा स्वस्थ तर्कों के बड़े प्रेमी हैं। उनका भोजन आदि सूक्ष्म है। कृपलानी जी का दृष्टिकोण एक कलाकार जैसा है। राजनैतिक क्षेत्र में तो वे देश की परिस्थिति के कारण ही आए हैं। बाल्यकाल से ही कृपलानी जी क्रान्तीकारी रहे हैं। वे स्वयं कहते हैं कि उन्होंने घर, बाहर, स्कूल तथा अन्य कई जगहों में बगावत की है। वे अध्यापकों से भी उलझते थे और इसी कारण दो बार कालेज से निकाले गए। अपने जीवन काल में उन्होंने कई प्रान्त बदले। आचार्य जी खुले आम कहते हैं कि वे केवल विपक्षियों से ही नहीं लड़ते वे अक्सर अपने मित्रों से भी उलझ जाते हैं। वे शान शौकत, तड़क भड़क से कोसों दूर भागते हैं। उनके साथ बौद्धिक तर्क करने में आनन्द आता है। उनसे वादविवाद करना अपने सिर पर मुसीबत मोल लेना है क्योंकि उनसे जीतना मुश्किल है।

आचार्य जी एक कुशल लेखक हैं। उनके अंग्रेजी के भाषण ओजपूर्ण और गम्भीर होते हैं। मेरठ कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने जो जोरदार भाषण दिया था उसे भुलाया नहीं जा सकता। इस भाषण के सम्बन्ध में सरोजिनी नायडू ने कहा था, "उनके गतिमान भाषण को कौन भूल सकता है ? क्रान्तिकारी जीवन से हटकर अहिंसावाद में अपने प्रविष्ठ होने की जो गाथा उन्होंने भाषण में सुनाई वह चिर स्मरणीय रहेगी। वह भाषण वास्तव में उस महान् व्यक्ति का महान आत्म-चरित्र है।"

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने एक स्थान पर कृपलानी जी के बारे में इस प्रकार लिखा था—"उनके भाषण बड़े प्रभावोत्पादक तथा गम्भीर होते है। उन्हें लोग शान्तिपूर्वक सुनते हैं। लोग उनके चुटकुलों तथा हास्यपूर्ण उदाहरणों से बड़ा आनन्द लेते हैं। वे गांधीवाद के सबसे बड़े प्रवक्ता हैं। शैली, तर्क तथा विचारधारा की दृष्टि से उनके द्वारा लिखित गांधी साहित्य बड़ा ही महत्वपूर्ण है।"

अपने को गाधीवादी होने पर कृपलानी जी को गर्व है। उन्होंने गांधीवाद को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और परखा है। एक बार उन्होंने कहा था "मैं गांधीवाद का बहुत सतर्क होकर विश्लेषण करता हूं पर फिर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मैं बापू को सदा सही पाता हूं। तब मैं और कर ही क्या सकता हू सिवाय इसके कि उनका अनुगमन करू ? यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं हू। दूसरा उत्तम मार्ग जो मेरे लिए रह गया है वह यह है कि किसी अन्यतम प्रतिभावान व्यक्ति का अनुसरण करूं और यदि ऐसा न करूं तो मैं दोनों तरफ से डूबा।"

कृपलानी जी एक राजनैतिक साधु हैं। जीवन तथा राजनीति को वे एक दार्शनिक दृष्टिकोण से नापते हैं। बम्बई में चुनाव हारने के बाद लोग अनुमान करते थे कि कृपलानी जी को बड़ा दु.ख होगा और उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा पर लोगों की यह धारणा गलत निकली। कृपलानी जी के एक मित्र ने पूछा, "दादा, हम तो सोचते थे कि बम्बई के चुनाव से आपके स्वास्थ्य को बड़ा धक्का पहुंचेगा किन्तु हम तो आपको स्वस्थ्य तथा प्रसन्न देख रहे हैं।" वे जोर से हंसे और कहा, "मुझे स्वयं मालूम नहीं कि मैं कैसे जिन्दा हूं। साधारणतः लोग परमात्मा से कई प्रकार के वरदान मांगते हैं किन्तु मैं केवल यह वरदान मांगता रहा हूं कि मुझे ईश्वर हर प्रकार के सुख दुख झेलने की शक्ति दे। इसी कारण मैं सभी कष्टों को सरलता से झेल लेता हूं।"

कृपलानी जी विश्वासवान मनुष्य हैं। यही विश्वास उन्हें सबल देता है। वह आवश्यकता पड़ने पर उद्देश्यो और आदर्शों के लिए हंसते हंसते फांसी का तख्ता चूम सकते हैं। ऐसे ही लोग अपने सहयोगियों के हृदयों में सम्मान और साहस पैदा कर सकते हैं।

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने एक स्थान पर कृपलानी जी के बारे में इस प्रकार लिखा था—"उनके भाषण बड़े प्रभावोत्पादक तथा गम्भीर होते हैं। उन्हें लोग शान्तिपूर्वक सुनते हैं। लोग उनके चुटकुलों तथा हास्यपूर्ण उदाहरणों से बड़ा आनन्द लेते हैं। वे गांधीवाद के सबसे बड़े प्रवक्ता हैं। शैली, तर्क तथा विचारधारा की दृष्टि से उनके द्वारा लिखित गांधी साहित्य बड़ा ही महत्वपूर्ण है।"

अपने को गांधीवादी होने पर कृपलानी जी को गर्व है। उन्होंने गांधीवाद को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा और परखा है। एक बार उन्होंने कहा था "मैं गांधीवाद का बहुत सतर्क होकर विश्लेषण करता हूं पर फिर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मैं बापू को सदा सही पाता हूं। तब मैं और कर ही क्या सकता हूं सिवाय इसके कि उनका अनुगमन करूं ? यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं हूं। दूसरा उत्तम मार्ग जो मेरे लिए रह गया है वह यह है कि किसी अन्यतम प्रतिभावान व्यक्ति का अनुसरण करूं और यदि ऐसा न करूं तो मैं दोनों तरफ से डूबा।"

कृपलानी जी एक राजनैतिक साधु हैं। जीवन तथा राजनीति को वे एक दार्शनिक दृष्टिकोण से नापते हैं। बम्बई में चुनाव हारने के बाद लोग अनुमान करते थे कि कृपलानी जी को बड़ा दुःख होगा और उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा पर लोगों की यह धारणा गलत निकली। कृपलानी जी के एक मित्र ने पूछा, "दादा, हम तो सोचते थे [illegible]
के [illegible]
स्वास्थ्य तथा प्रसन्न देख रहे हैं।" वे जोर से हंसे
स्वयं मालूम नहीं कि मैं कैसे जिन्दा हूं। [illegible]
से कई प्रकार के वरदान मांगते हैं किन्तु मैं
रहा हूं कि मुझे ईश्वर हर प्रकार के
इसी कारण मैं सभी कष्टों को [illegible]

कृपलानी जी विश्वासवान मनुष्य हैं। यही विश्वास उन्हें सबल देता है। वह आवश्यकता पड़ने पर उद्देश्यों और आदर्शों के लिए हंसते हंसते फांसी का तख्ता चूम सकते हैं। ऐसे ही लोग अपने सहयोगियों के हृदयों में सम्मान और साहस पैदा कर सकते हैं।

सरोजिनी नायडू

श्रीमती सरोजिनी नायडू न केवल एक नेत्री और कवियत्री थीं बल्कि वह स्वयं एक संस्था थीं। जो भी उनके सम्पर्क में आया वह उनकी प्रखर बुद्धि, गहरी मानवीय भावना और सहृदयता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। सरोजिनी देवी नेहरू परिवार में बड़ी बहन के समान थीं। जब जी चाहता वह बराबर जवाहरलाल नेहरू के साथ हंसी मजाक शुरू कर देती थीं और उनके गुस्से की कुछ घड़ियां लेकर टाल कर देती थीं। एक दिन कई युवतियां नेहरू जी का भाषण सुनने गईं। भाषण के बाद श्रीमती नायडू ने कहा, "जवाहर ऐसा न सोचना कि ये सब युवतियां, जो तुम्हारे भाषण सुनने आती हैं, समाजवादी हो गई हैं। ये केवल तुम्हारा सुन्दर मुखड़ा देखने आती हैं।"

श्री रणजीत पंडित के देहान्त के बाद श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित को सरोजिनी देवी से बड़ा साहस बंधा था। श्रीमती नायडू उस समय दिल्ली में थीं पर वह अपनी पुत्री पद्मजा नायडू को साथ लेकर फौरन इलाहाबाद चली आईं। उनके पहुंचते ही श्रीमती पंडित को बड़ी सान्त्वना मिली और बहुत ढाढ़स बंधा। श्रीमती

पंडित को गले से लगाकर सरोजिनी देवी बोलीं, "स्वरूप, धीरज रक्खो, मैं तुम्हारी हिम्मत को इस समय देखना चाहती हूं। प्यारा रणजीत हमेशा हमारे साथ रहेगा।"

सरोजिनी देवी फरवरी १३, सन् १८७९ को हैदराबाद में पैदा हुईं। उनके पिता अघोर नाथ चटर्जी उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाल की एक विभूति थे। अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा उन्होंने अपने प्रान्त से दूर हैदराबाद में बिताया। सरोजिनी उनकी लाड़ली बच्ची थी और उसको प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने आप दी। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने एक बार कहा था, "पिताजी की देख रेख में मेरी शिक्षा वैज्ञानिक थी। उन्होंने यह इरादा कर रक्खा था कि मुझे या तो बड़ा वैज्ञानिक या संगीतज्ञ बनायेंगे। पर उनसे और अपनी मां से जो कवित्व की ओर रुझान मैं ने पाया था वह काफी दृढ़ निकला। एक बार मैं जब ११ वर्ष की थी तो एक गणित के प्रश्न के साथ सर मार रही थी। सवाल का हल तो नहीं निकला पर एक पूरी कविता निकल पड़ी। मैं ने उसे लिखा।"

कहा जाता है कि इस घटना से उनको अपनी कवित्व शक्ति का प्रथम आभास मिला। यद्यपि उन्होंने अपनी कविता को अंग्रेजी भाषा में छंदोबद्ध किया है पर उनकी भावना वस्तुतः भारतीय है और उनमें एक अपना विशेष सौन्दर्य और आकर्षण है। उनकी कविता की विशेषता–विचारों का प्राधान्य, संगीत का माधुर्य और भाषा के ऊपर अधिकार है। उनमें पूरे खिले हुए कमल की सी ताजगी, मिठास और स्वाभाविकता है।

सरोजिनी नायडू एक दिन आनन्द भवन के बरामदे में कंधे पर रेशम का शाल डाले घूम रही थीं। किसी विचारधारा में मग्न थी और किसी की तरफ निगाह न उठाती थी। हम थे एक बड़ी खबर की तलाश में। एक 'स्कूप' करना चाहते थे। हम उन दिनों स्वराज्य भवन में रहते थे। "अरे, जल्दी आनन्द भवन जाओ। सरोजिनी

देवी अभी यह बता रही थीं कि महादेव देसाई की मृत्यु आगा खां पैलेस में कैसे हुई। उन्हें थरथराते हुए हाथों से बापू ने कैसे मरने के बाद नहलाया था और कैसे बेज़ार होकर कस्तूरबा रोई थी," स्वर्गीय पूर्णिमा बनर्जी ने मुझसे कहा।

जल्द से बदन पर कुरता डालकर मैं आनन्द भवन पहुचा, परन्तु किस्सा खतम हो चुका था। सरोजिनी देवी गम्भीर मुद्रा में इधर उधर टहल रही थीं। बहुत देर के बाद मैंने धीरे से कहा, "मुझे भी महादेव भाई के बारे में बता दीजिए।"

"मैं क्या कोई मशीन हू ? तुम मुझे दिक न करो," वह बोली।

मैं चुपचाप खड़ा हो गया। लेकिन 'दिक' कैसे न करें। उस दिन तक किसी को आगा खां पैलेस की वह करुण कहानी मालूम नहीं थी। पत्रकारिता के नुक्तेनजर से उस कहानी को सुनाना एक बड़ा 'स्कूप" होगा और जनता उसको बड़ी दिलचस्पी से पढ़ेगी, मैंने सोचा। लेकिन सरोजिनी के मुख से ही उस घटना का वर्णन कैसे सुनू ? वह उसी दिन शाम को दिल्ली जा रही थी। अचानक ख्याल आया कि उनके साथ सफर करुं और वह शायद "मूड" में आ जाये और मुझे भी सुना दे।

"क्या मैं आपके साथ सफर कर सकता हूं ?" मैंने दबी जबान से पूछा।

"क्यों नहीं, अगर मुझे तुम्हारा टिकट न लेना पड़े।" उन्होंने हंस कर कहा।

मैं खुश हो गया। मैंने सोचा कि अब काम बन जाएगा। पैसे पास नहीं थे उस दिन फर्स्ट क्लास के टिकट के लिए। करजा काढ़ा। चुपके से टिकट खरीदा। किसी को नहीं बताया कि मैं उन के साथ जाऊंगा। मिसेज पंडित, पद्मजा नायडू और स्वर्गीय फीरोज गांधी उन्हें पहुंचाने स्टेशन आए थे। जब गाड़ी काफी रफ्तार में आ गई तो मैं गाड़ी में चढ़ गया। फीरोज को बुरा लगा कि मैं ने अपने दिल्ली

जाने के इरादे की हवा भी न लगने दी जब मैं दिन भर उनके साथ था। उन दिनों वह मुझसे कुछ नाराज थे। उन्होंने कई लोगों से कहा, "टंडन, मिसेज नायडू के साथ गए हैं, भगवान जाने कल क्या उडायेंगे।"

हर स्टेशन पर मैं अपने डिब्बे से उतर कर मिसेज नायडू के डिब्बे के सामने खड़ा होता था और उनके बुलाने का इन्तजार करता था। काफी स्टेशन निकल गए और मैं निराश होने लगा। यह सोचा कि आज के 'रोजगार' में काफी घाटा हो गया। पैसा भी गया और 'स्कूप' भी न कर पाए। एक स्टेशन पर गाड़ी काफी देर न जाने क्यों रुक गई और मिसेज नायडू ने मुझे अपने डिब्बे में बुलाया और कहा, "तुम मेरी जान नहीं छोड़ोगे। अच्छा मैं बता रही हूं सुन लो और अपने शब्दों में बना लेना।" उन्होंने मुझे करुण कहानी सुनाई। मैंने उसे अखबारों में छापी और तहलका मचा।

देश के सारे नेता उनका आदर करते थे। हंसी मजाक करने में वह बड़ी तेज थी और मौका पाने पर कभी चूकती न थी। जब राजगोपालाचारी भारत के गवर्नर जनरल थे तो वह उनसे मिलने गई। राजा जी उनको राष्ट्रपति भवन दिखाने ले गए। उन्होंने सरोजिनी से इस बात की शिकायत की कि अब उन्हें इतने बड़े बड़े शानदार कमरों में इतने लम्बे चौड़े पलगों पर सोना पड़ता है। एक दम सरोजिनी बोली, "राजा जी, आप जानते हैं मैंने आपका बड़ी बड़ी दिक्कतों में साथ दिया है मगर मैं आशा करती हूं कि आप मुझे इस मुसीबत में साथ देने को न कहेंगे।"

श्रीमती नायडू कई बार जेल गई थीं और उन्होंने हमेशा जेल के जीवन को प्राकृतिक सरलता के साथ बिताया। देश की स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने बहुत कुछ सहा और त्याग किया। सन् १९४२ में उनकी सबसे बड़ी परीक्षा हुई जब कि उनको आगा खां महल में महात्मा गांधी, कस्तूरबा और महादेव देसाई के साथ बंद कर दिया गया था। यह मशहूर है कि सरोजिनी देवी महात्मा गांधी की बड़ी भर्त्सना के साथ

देख रेख करती थीं और उनकी सहूलियत और आराम का ध्यान रखती थीं।

गोलमेज सभा के सिलसिले में जब वह लंदन गई तो भारतीयों की स्वतंत्रता की मांग के बारे में उनको कई सभाओं में भाषण देने पड़े। इग्लैंड से वह अमेरीका गई। वहां जाकर उन्होंने एक दौरा भाषण देने के लिए किया और वहां की जनता को भारतीय दृष्टिकोण के उचित विवेचन से बहुत प्रभावित किया। कैथरिन मेयो की गन्दी पुस्तक 'मदर इंडिया' के लिखने से जो जहर फैल गया था, उसको काफी हद तक दूर किया। अमेरीका में अपने भाषणों में उन्होंने किसी कृपा की याचना नहीं की। वह किसी मदद के लिए नहीं गिड़गिड़ाई, उन्होंने केवल भारत के उद्देश्य को संसार के समक्ष प्रस्तुत किया। अमेरिकनों की एक सभा में भाषण करते हुए उन्होंने कहा, "हम पश्चिम में किसी से भी तरव सहानुभूति की याचना नहीं करते। हमारा पश्चिम में किसी पर विश्वास नहीं है। इसका कारण सीधा और साफ है। ब्रिटिश उदारवादी, मजदूर दलीय या कट्टरपंथी कोई भी भारत से हाथ धोना सहन नहीं कर सकता। हम याचना की झोली लिए नहीं फिरते। हम अपनी शक्ति पर खड़े हैं।"

सन् १९४५ में उन्होंने दिल्ली में पत्रकारों को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के सम्बन्ध में भारत की स्थिति स्पष्ट की। कांग्रेस कार्य-समिति की वही एक सदस्या मात्र जेल के बाहर थी और सभी उनकी ओर नेतृत्व तथा दिशा दर्शन के लिए ताक रहे थे। वह अपनी जनता पर किए सरकारी अत्याचारों से द्रवित जेलों में बंद हजारों देशवासियों की दशा से दुखी थीं। उन्होंने भारतीय और विदेशी पत्रकारों को ओजस्वी वाणी में कांग्रेस की स्थिति को समझाया। उनका भाषण असाधारण था तथा श्रोता उनकी राजनैतिकता से, प्रभावित हुए। उनका हृदय सात्विक कोप से भरा हुआ था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार ‑ तीव्र भर्त्सना की और कहा, "भारत ने नैतिक प्रश्नों पर अपना

निर्णय किया है तथा कांग्रेस कार्यसमिति अपने निश्चय पर निश्चल रहेगी चाहे इसका परिणाम कुछ ही क्यों न हो।" उन्होने ब्रिटिश साम्राज्यशाहियों को चुनौती दी कि वे नजरबद नेताओं पर खुली अदालत में मुकदमा चलाएं तथा यदि दम हो तो उनका अपराध प्रमाणित करें। इस पत्रकार सम्मेलन पर उनकी प्रतिभा का असाधारण प्रभाव पड़ा। अपनी वार्ता को समाप्त करते हुए उन्होने कहा, "पत्रकारों, यदि मैं मर जाऊ तो तुम जनता से कहना कि श्रीमती नायडू पत्रकारों से बातें करते करते चल बसीं।"

यह उत्तर प्रदेश का महान सौभाग्य था कि ऐसी प्रशस्त, विज्ञ तथा गुणवन्ती नेता वहाँ की राज्यपाल हुई। अफसरो तथा मंत्रियों में वह बहुत प्रिय रही और अपने कार्यों को पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक बनाया। लखनऊ का राज्य भवन इस महान महिला के अट्टहास से गूजता था और संध्या समय बड़े बड़े दरबार लगते थे जहां गरीब, अमीर, हिन्दू, मुसलिम, कवि, राजनीतिज्ञ, अफसर सभी इकट्ठा होकर श्रीमती नायडू के सजीव हास परिहास का रस लेते थे।

सरोजिनी नायडू एक बडी शानदार महिला थी। गाधी जी उनका बड़ा सम्मान करते थे। अंग्रेजी भाषा पर उन्हे कमाल हासिल था। जो कुछ भी लिखती थी उसमें उनकी योग्यता की छाप होती थी। वह एक ऊंचे दरजे की कवि थी। १६२५ में वह काग्रेस की अध्यक्ष थी। उन्होंने अपने देश की जी जान से सेवा की। भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने बड़ी धाक जमाई थी। २ मार्च १६४६ को उनका लखनऊ में देहान्त हो गया। वह हिन्दू-मुसलिम एकता की बड़ी जोरदार हामी थी। उनमें बड़े बड़े गुण थे और इसके कारण सारा देश उनका बड़ा सम्मान करता था। उनका जीवन देश प्रेम का एक जोरदार गीत है।

खान अब्दुल गफ्फार खां

यदि मनुष्यों को अपने सिद्धान्तों में पूर्ण विश्वास न हो और ईश्वर का सहारा न हो तो वह घोर अन्याय और दारुण दुख को सहन नहीं कर सकता । हमारे महान् नेता खान अब्दुल गफ्फार खा ने अपने जीवन के २६ साल जेल में हंसते हंसते बिताये । उन्हें, उनके सिद्धान्त, जीवन से ज्यादा प्यारे हैं । चाहे उनके प्राण निकल जाएं लेकिन वह अपने सिद्धान्तों को नही छोड सकते । अपने देश की आजादी के लिए अंग्रेजों से लड़े और सालों जेलों में गुजारे । पाकिस्तान होने के बाद काफी अरसे तक जेल ही मे रहे । जिस व्यक्ति ने इतनी सच्चाई और ईमानदारी से काम किया हो और जिसे इतनी यातनाएं झेलनी पड़ी हो यह देखकर अनायास ही हमारे सिर झुक जाते है । यह भाग्य की बात है कि इतन बड़े आदमी को पाकिस्तान के छोटे छोटे आदमी वर्षों तक कैद में डाले रहें । गफ़्फार खां थोरो की तरह यही सोचते होंगे कि महान् अन्याय के समय में न्यायी की जगह जेल मे ही होती है ।

गफ्फार खां विनम्रता तथा कुलीनता के प्रतीक हैं । लोग उन्हे सीमान्त गांधी कहते थे और 'बादशाह खां' की पदवी से उन्हें विभूषित किया था परन्तु वे इसे पसन्द नहीं करते थे । एक बार मैं ने उनके साथ कुछ दूर तक यात्रा की थी और मैं बार बार उन्हें फ्रान्टियर गाधी कह कर सम्बोधित करता था । उन्होंने कुछ परेशानी से साथ मुझ से कहा, "भाई साहब, ... बिला वजह मुझे ऐसी पदवी के असाधारण बोझ से क्यों दबाते हैं । हमें आप गफ्फार खां कहकर

क्यों नहीं सम्बोधित करते ?" मैं ने शीघ्र ही उनकी विनम्रता तथा कठिनाई का अनुभव कर लिया। चलती गाड़ी में हम लोगो ने लगभग एक घंटे तक बातचीत की और मेरे सभी प्रश्नो का उत्तर उन्होने सरल, ज्ञानदायक तथा उचित ढंग से दिया।

अंग्रेजी सरकार के साथ अनेक बार उनका भीषण संघर्ष हुआ था और उन्हें कई बार यातनाएं भी सहनी पड़ी थी। गांधी जी की डंडी यात्रा के उपरान्त पेशावर में महान् राजनैतिक चेतना उत्पन्न हो गई थी। गफ्फार खां और उनके भाई को पेशावर के दरबार मे आने के लिए आमंत्रित किया गया था परन्तु इन लोगों ने दरबार में जाने से इंकार कर दिया। इसमे कमिश्नर वगैरह बहुत नाराज हुए तथा खां भाइयों को गिरफ्तार कर लिया। गफ्फार खां अनेक बार जेल गए परन्तु उनकी भावनाएं सरकारी यातनाओं द्वारा नही दबाई जा सकी। एक बार तो उन्हें जेल में अपराधियों के साथ रख दिया गया था और दूसरी बार तनहाई दी गई। एक बार एक जेल में तो कोई भी बेड़ियां उनको ठीक ही नही होती थी तब विशेषतः उनके लिए एक नई बेड़ी बनाई गई। वह भी उनके पैर में इतनी कड़ी होती थी कि उनके एड़ी के ऊपर का कुछ हिस्सा जख्मी हो गया और उससे खून बहने लगा। जेल के सुपरिन्टेंडेन्ट ने "सान्त्वनापूर्ण ढंग से कहा, "धीरे धीरे आप इनके अभ्यस्त हो जाएंगे।"

अपने प्रान्त में उन्होंने राष्ट्रीय स्कूलों को चलाया तथा सरकार के कोप भाजन बने। सरकार ने उनके पिता बहराम खां से यह शिकायत की कि गफ्फार खां अपनी क्रियाओं से प्रान्त की शान्ति भंग कर रहा है। बहराम खां ने जब यह बात गफ्फार खां से कही तब गफ्फार खां ने यह उत्तर दिया, "पिता जी, यदि ये ब्रिटिश अफसर आपसे मेरी नमाज रोकने के लिए कहें तो क्या आप ऐसा करेंगे ?" "हम ऐसा नहीं करेंगे," उनके पिता ने तुरन्त उत्तर दिया। गफ्फार खां ने अपने पिता को समझाया, "राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने के जिस कार्य में मैं लगा हूं यह भी मेरा धार्मिक कर्तव्य है।"

गफ्फार खां अलीगढ़ युनिर्वसिटी में पढ़ते थे। उन्हें मौलाना आजाद के लेखों ने बड़ा प्रभावित किया था। वह जब सीमा प्रान्त में नए नए विचार लेकर गए तो लोगों में बड़ी हलचल मची और वे बहुत प्रभावित हुए। जहां कहीं वे बोलते थे हजारों का मजमा होता था और लोग उन्हें बड़े ध्यान से सुनते थे। उन्होंने 'खुदाई खिदमतगार' नामक संस्था स्थापित की। एक दिन जब वे तकरीर कर रहे थे उन्हें पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। पुलिस उन्हें गिरफ्तार नहीं करना चाहती थी क्योंकि उनके दादा ने अंग्रेजी सरकार की बड़ी मदद की थी लेकिन पुलिस को उनको और उनके पिता दोनों को गिरफ्तार करना पड़ा।

गफ्फार खां ने सीमा प्रान्त के खूंख्वार लोगों को अहिंसा का सबक सिखाया यह कमाल की बात थी। सन् १९३८ में जब गांधी जी सीमा प्रान्त का दौरा कर वापस आए तो उन्होंने कहा था, "गफ्फार खां खुदा का सच्चा बेटा है। वह ईश्वर की शक्ति को भलीभांति जानता है और यह भी समझता है कि यदि भगवान चाहेगा तभी उसका आन्दोलन सफल होगा। वह कर्मयोगी है और अपना काम कर लेने के बाद सब ईश्वर पर छोड़ देता है। उसके लिए इतना समझ लेना काफी है कि पठानों का भला अहिंसा द्वारा ही होगा। वह पठानों को और बहादुर बनाना चाहता है। परन्तु वह यह भी जानता है कि ऐसा अहिंसा द्वारा ही हो सकता है।"

गफ्फार खां को पद लोलुपता बिल्कुल नहीं है। दो बार उनको कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए कहा गया था परन्तु उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि वह नेता नहीं है और नेतागिरी का काम नहीं कर सकते हैं। उन्हें गांधी जी में पूर्ण विश्वास था और वह बापू की फौज के एक सिपाही होने में ही संतुष्ट थे। उनके लिए जवाहर लाल ने कहा है: "वह उस तरह के राजनीतिज्ञ तो हैं नहीं जैसा कि राजनीतिज्ञ हैं। उन्हें राजनीति की तिकड़मबाजी तो आती नहीं। वह सीधे सरल स्वभाव के आदमी हैं।"

गफ्फार खां का जन्म सन् १८६० ई० मे पेशावर जिले के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। प्रारम्भ मे इनकी रुचि कृषि मे थी और वे नित्य खेत में हल जोतते थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पेशावर म्युनिसिपल वोर्ड स्कूल में हुई थी और वाद में यह मिशन हाई स्कूल में दाखिल हुए। एक त्यागी तथा कर्तव्यनिष्ठ धर्मोपदेशक ने इन्हे अत्यधिक प्रभावित किया था। उनका नाम रेवरेन्ड विग्रम था। उन्होंने अपने उदाहरण से उन्हें प्रेरित किया। गफ्फार खा के पिता एक इज्जतदार तथा अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने भी अपने पुत्र के जीवन को प्रभावित किया। एक वार गफ्फार खां इंग्लैंड इंजीनियर की परीक्षा पास करने के लिए जा रहे थे। उनकी मा ने रोकर कहा, "मेरा एक लड़का तो बाहर गया ही है और यदि तुम भी चले जाओगे तो मैं अकेली क्या करूंगी ?" अपनी मां को सान्त्वना प्रदान करने के लिए उन्होंने इंग्लैंड जाना छोड़ दिया।

प्रारम्भ में उनकी रुझान सैनिक शिक्षा की ओर अधिक थी परन्तु जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनके एक सम्बन्धी की वेइज्जती फौज में एक वार केवल इसलिए हुई थी कि वह भारतीय था तब उन्होंने सदा के लिए इस विचार का परित्याग कर दिया और यही से उनके जीवन में आमूल परिवर्तन हो गया।

देश के विभाजन के बाद बड़ी बड़ी कयामतें आईं उनमें से एक गफ्फार खां का सालों तक पाकिस्तान जेल में रखा जाना था। आजादी के इतिहास में गफ्फार खां का नाम सोने के हरफों में लिखा है और एक अनोखी शान से चमक रहा है। इस वात की तो जवाहरलाल जी ने भविष्यवाणी कर ही दी थी जब उन्होंने यह लिखा कि जब हमारे स्वतंत्रता संग्राम की तवारीख लिखी जाएगी, वहुत से लोग जो आज बड़ा शोर गुल मचा रहे हैं भुला दिए जाएंगे लेकिन गफ्फार खां को भुलाना नामुमकिन होगा। गफ्फार खां हमारे स्वतंत्रता संग्राम के एक बड़े भारी अगुवा हैं। हमारे राष्ट्रीय संघर्ष के एक बड़े नेता हैं।

प्यारे भाई" करके लिखते थे। जवाहर लाल ने उस पत्र का उ
देते हुए उन्हें लिखा, "मैं बहुत से लोगों का प्रधान मंत्री हू लेकिन
प्रकाश का भाई हूं।" जय प्रकाश यह पत्र पाकर बहुत लज्जि
हुए। उन्होंने प्रधान मंत्री की मृत्यु के बाद एक जलसे में कहा, '
अपने आपको इस गलती के लिए कभी माफ न कर सकूगा।"

जय प्रकाश जी बड़े वीर पुरुष हैं और अपने सिद्धान्तों पर अट
रहते हैं। उन्होंने 'अकसाई चिन' के बारे में अपनी राय प्रकट क
और कुछ लोगों ने उनकी कटु आलोचना की। कश्मीर के बारे में
उनके कुछ विचार बहुत से लोगों को पसन्द नहीं आते लेकिन उनक
कहना है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में एकदम समझौता होन
चाहिए और अगर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बराबर आपस के झग
में फंसे रहे तो दोनों देशों को बड़ी हानि होगी।

जय प्रकाश का जन्म बिहार जिले के सिताबदिया गांव में ११
अक्तूबर सन् १९०३ में हुआ। आप अल्पावस्था ही में भारत छोड़कर
अमेरिका चले गए। आपने अमेरिका में शिक्षा प्राप्त की। वहां
करीब ८ वर्ष तक रहे। आपने पांच विश्वविद्यालयों में अध्ययन
कार्य किया। शिक्षा प्राप्त करते समय जीविकोपार्जन के लिए आपने
होटल कर्मचारी, वस्तुओं को बांधने वाले, मजदूर, विक्रेता तथा
[illegible] के रूप में काम किया। जय प्रकाश पहले गणित, भौतिक
शास्त्र एवं रसायन शास्त्र के छात्र थे परन्तु बाद में आपने कई वर्षों
तक जीव विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थ शास्त्र तथा समाज शास्त्र का
अध्ययन किया। अमेरिका में भी आपने कुछ स्थानों पर ऐसे लोगों
जो बहुत ही गरीबी से अपना जीवन निर्वाह करते थे।
देखकर आपने यह अनुभव किया कि ऐसा कोई
को पर्याप्त मात्रा में चीजें उपलब्ध हों और किसी
[illegible]। आप १९२९ में भारत आ गए। जय प्रकाश
[illegible] व्यतीत करने के लिए भारत नहीं लौटे वरन् अपने

देश की सेवा करने तथा कष्टों का जीवन व्यतीत करने के लिए आए यहां भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के श्रम अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष बना गए। सन् १९३२ में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय आप काग्रे के महा मंत्री भी रहे।

लेखक के रूप में जय प्रकाश की लेखनी में शक्ति है। आपक भाषा सरल, सीधी और प्रभावशाली है। आप योग्यता के सा अपने कथन को प्रस्तुत करते हैं तथा अपने पाठकों को समझाने की चेष्ट करते हैं। वह प्रसिद्ध वक्ता नहीं है पर सरल और परिचित शैली इस तरह भाषण करते हैं मानों श्रोताओं से कमरे में बैठे मित्रों समा बातचीत कर रहे हों। उनका मृदुल स्वर, नपे तुले तर्क, विषय प अधिकार उन्हें अच्छा वक्ता बना देता है। वह अपने श्रोताओं भावावेश नहीं उभाड़ते। वह तो उन्हें समझाने का प्रयत्न करते है वह अपने श्रोताओं को अपनी ईमानदारी से प्रभावित करते हैं।

जय प्रकाश नारायण ने राजनीति में कुछ बड़ी अच्छी परम्पर डाली हैं। उन्होंने यह दिखा दिया कि उन्हें कोई पद देकर खर नहीं सकता और सच्चे काम करने वाले बिना पद लिए हुए भी क कर सकते हैं। वह ऐसी खरी बातें कहते हैं जो लोग सरकार में रहक उन बातों को कहने में डरते हैं। वह बड़े संजीदा पुरुष हैं। मुसीबतों से घबड़ाते नहीं और दूसरे लोगों की बात समझने कोशिश करते है। जय प्रकाश ने अपने उदाहरण से यह सि किया है कि सर्वोदय में काम करने के लिए लोगों को आदर्श वा होना चाहिए। वह यह नहीं कहते कि सर्वोदय में काम करने व हर बात सही करते हैं या सर्वोदय आन्दोलन में कोई गलत बात न है। उनका कहना है कि सर्वोदय का रास्ता इस देश के लिए स अच्छा रास्ता है।

जवाहर लाल नेहरू के बाद वह हिन्दुस्तान में सबसे लोक नेता रहे हैं और समय समय पर लोगों ने उनको नेहरू का उत्त

आचार्य नरेन्द्र देव

लोग आचार्य नरेन्द्र देव को इस लिए ही याद नही करते कि वह एक बड़े विद्वान पुरुष थे बल्की इस लिए कि वह शराफत में अपना सानी नही रखते थे । योग्यता मे देश में वह शायद ही किसी से कम थे । विद्वान लोग उनका साथ करना चाहते थे । और उनकी संगत में बैठकर बहुत खुश होते थे । नम्रता उनमें कूट कूट कर भरी थी । वह सबको अपना साथी समझते थे और कभी भी अपनी धाक जमाने की फिराक मे नही रहते थे । वह लोगों को अपनी योग्यता और नम्रता से अपनी तरफ खीचते थे ।

राजनीति में रहने पर यह बहुत ही स्वाभाविक है कि आपके दुश्मन भी कई बन जायेंगे । दुश्मनो का न होना एक ऐसा सौभाग्य है जो बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है । आचार्य नरेन्द्र देव ऐसे लोगों में से एक थे । यह मनीषी तथा योग्य राजनीतिज्ञ न केवल उन लोगों के आदर का भाजन थे जो उनकी राजनीति से सहमत थे, बल्कि उनसे असहमत रहने वाले लोग भी उनका सम्मान करते थे । वे राजनीति को व्यक्तिगत सम्बन्ध के साथ हस्तक्षेप नही करने देते और कांग्रेस मे भी उनके प्रशंसकों तथा मित्रों की बहुत बड़ी संख्या थी जो कभी उनके विरुद्ध एक भी कटु वचन का उच्चारण नहीं करते थे । पंडित जवाहरलाल नेहरु भी नरेन्द्र देव के प्रति बहुत आदर तथा प्रेम रखते थे और उनके दिल्ली आने पर अपने साथ ठहराने को आमंत्रित करते थे ।

जब कभी एक ऐसे आदमी की आवश्यकता पड़ती थी, जो राजनीति में अथवा शिक्षा में निष्पक्षतापूर्वक ईमान-

दारी से काम कर सके, तो अक्सर आचार्य नरेन्द्र देव का नाम ऐसे अवसरों पर लिया जाता था। कांग्रेस के साथ उनका राजनीतिक मतभेद रहते हुए भी कई बडे कांग्रेस के पदाधिकारियों नेउनसे लखनऊ विश्वविद्यालय का उपकुलपति (वाइस चान्सलर) बनने का बहुत अनुरोध किया था और मुझे मालूम है कि किस प्रकार उनको बनारस का उपकुलपति बनने के लिए बाध्य किया गया था। उनके विपक्षी भी उनका विश्वास करते थे क्योंकि वे जानते थे कि वे कभी कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जो अनुचित या सम्मान के विरुद्ध होगा। कई कांग्रेस के नेताओं ने उनसे इन विश्वविद्यालयों के उपकुलपति पद को स्वीकार करने के लिए कहा क्योंकि वे जानते थे कि आचार्य जी अपने पद से कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं उठायेंगे और कभी भी छात्रों को कांग्रेस अथवा सरकार के विरुद्ध कोई काम करने के लिए नहीं भड़कायेंगे। ऐसा हुआ भी। नरेन्द्र देव के समय में लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों ने बहुत शिष्ट और संयत व्यवहार किया, क्योंकि वे सदा इस बात का ख्याल रखते थे कि कहीं आचार्य नरेन्द्र देव की भावनाओं को धक्का न लगे। उनका सम्मान अध्यापक और विद्यार्थी दोनों करते थे।
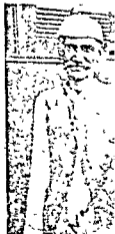
नरेन्द्र देव के राजनीति में चले जाने से विद्वानों की दुनियां को बहुत बड़ी क्षति पहुंची। जब वह पढ़ाते अथवा पढ़ते थे तो बहुत प्रसन्न रहते थे। वह एक उच्च विचारक थे और कई पेशेवर अध्यापकों में जो पाखण्डीपन होता है उससे कोसों दूर थे। उन्हें कभी यह गुमान नहीं हुआ कि उन्हें बहुत कुछ आता है। वह सदा सीखने के लिए प्रस्तुत रहते थे और अपने विद्यार्थियों से भी कुछ न कुछ सीख लेते थे। उनकी आंखें चमकती थीं। चेहरे पर मुस्कराहट खेलती रहती थी और जब कोई व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक विचारणीय बात कहता था तो वह ध्यानपूर्वक उसे सुनते थे। वह एक अच्छे बातचीत करने वाले और धैर्यपूर्ण श्रोता थे।

नरेन्द्र देव जी इलाहाबाद में हमारे मेहमान होते थे। उनको दमे की बीमारी थी। जब वह मुस्कुराते हुए घर में घुसते थे तो खुशी छा जाती थी। एक दिन रात में उन्हें दमे का बड़े जोर से दौरा हुआ। लॉन पर तीन बजे रात तक बेजार रहे। जब करीब एक बज गया तो बोले, "बेटा अब तुम तो सो जाओ।" उन्हें दूसरों का हर समय ख्याल रहता था। मैं ने उन्हें उत्तर दिया, "बाबू जी, आप इतने कष्ट में हैं और मैं सो जाऊ यह कैसे हो सकता है ? खैर, मुझे यह यकीन हो गया है कि आप कुछ अरसे बाद करीब करीब ठीक हो जायेंगे। अब दमे की दवा निकल आई है।" "वह क्या, जरा हमें भी बताओ ?" उन्होंने पूछा। मैंने उत्तर देते हुए कहा, "भारत के राष्ट्रपति का पद उसका इलाज है। देखिए, राजेन्द्र बाबू कई सालों से ठीक ही है।" यह सुन कर उन्हें हसी आ गई। हम सोचते थे कि आचार्य जी चाहे किसी पार्टी में हों वह एक दिन हमारे राष्ट्रपति अवश्य होंगे। मैं सोचता हूं कि यदि वह जीवित होते तो वह एक दिन राष्ट्रपति जरूर होते।

जब अपने समाजवादी साथियों को लेकर वह कांग्रेस से अलग हो गए तो लोगों को खेद हुआ। उस समय उत्तर प्रदेश के प्रान्तीय कांग्रेस के मंत्री ने उनको एक पत्र लिख कर उनसे प्रार्थना की कि अपने इस निर्णय को दुहरा लें और कांग्रेस को न छोड़ें। आचार्य जी ने जो उत्तर भेजा, वह बहुत शानदार था। उन्होंने कहा, "एक ऐसे समय में जब हम लोगों से यह कहा जा रहा है कि हमारे इरादे गड़बड़ हैं और हम कांग्रेस में फूट फैलाना चाहते हैं, और जब कुछ सामर्थवान उच्च पदाधिकारी यह धमकी देते हैं कि हमको नष्ट भ्रष्ट कर देंगे, यह प्रसन्नता का विषय है कि इस प्रान्त के कांग्रेस के सबसे बड़े कार्यकर्ता तो हमारे उन इरादों को समझते हैं जिनके कारण हमने यह कदम उठाया है।

"मैं इन अच्छी भावनाओं का सम्मान करता हूं और प्रान्तीय

लाल बहादुर शास्त्री

"आई जो याद उनकी तो आती चली गई।"

यह कह कर श्री ग्रलगूराय शास्त्री मौन बैठ गए। मैंने कहा कि "यह किसकी याद है जो ग्रापको इतनी बुरी तरह सता रही है?" एक मिनट तक बोले नहीं ग्रौर उनकी ग्रांखों में नमी ग्रा गई। कुछ देर के बाद कहा, "ग्राज सुबह लाल बहादुर शास्त्री पर एक लेख लिखने बैठा। यादों के हुज्जूम ने ऐसा घेरा कि समझ में नहीं ग्राया कि लेख कैसे शुरू करूं ग्रौर कहा समाप्त करूं।"

इतना कह कर उन्होंने लाल बहादुर शास्त्री के गुणों की चरचा शुरू की ग्रौर दर्जनों किस्से सुना डाले। बातें सुनकर बड़ा ग्रचरज हुग्रा ग्रौर यह समझ में न ग्राया कि इतना छोटा, गरीब बालक भारत का प्रधान मंत्री हो कैसे गया। मैं ने पूछा, "ग्रलगूराय जी, उनमें ऐसी क्या खास बात थी जो उन्होंने इतनी सफलता पाई?" जवाब मिला, "ग्ररे भाई, उनमें बहुत से गुण तो थे ही लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि उन पर भगवान की ग्रसीम कृपा थी।"

बात समझ में ग्राई। इसमें कोई शक नहीं कि वह बड़े भाग्यशाली पुरुष थे। शान से जिए। जम कर देश की सेवा की ग्रौर शान से मरे। कितने ग्रादमियों की मृत्यु इतनी शान से होती है? बिना कोई शारीरिक दुख झेले संसार से उस समय चले गए जब सारा देश उनके गुणों की दुन्दुभी बजा रहा था।

नरेन्द्र देव सदा अच्छे छात्र थे। "मेम्वार्स ऑफ ए रेवोल्युशनरी," क्रोपोटकिन की "म्युचुअल एड" और ए० के० कुमारस्वामी का "नेशनल आइडीयलिज्म", अरविन्द घोष के लेख, हर दयाल की पुस्तकें, तुर्गनेव की कहानियां, गैरीवाल्डी का जीवन चरित्र, मैजिनी के लेख, फ्रान्स की क्रान्ति पर पुस्तकें, ब्लाट्सशोलि की "थिअरी आफ स्टेट" और रूस का बहुत सा निहिलिस्ट साहित्य उन्होंने अच्छी तरह पढ़ा। वह गोविन्द वल्लभ पन्त, कैलाश नाथ काटजू, शिव प्रसाद

लाल बहादुर शास्त्री

"आई जो याद उनकी तो आती चली गई।"

यह कह कर श्री अलगूराय शास्त्री मौन बैठ गए। मैंने कहा कि "यह किसकी याद है जो आपको इतनी बुरी तरह सता रही है?" एक मिनट तक बोले नही और उनकी आंखों में नमी आ गई। कुछ देर के बाद कहा, "आज सुबह लाल बहादुर शास्त्री पर एक लेख लिखने बैठा। यादों के हुज्जूम ने ऐसा घेरा कि समझ में नही आया कि लेख कैसे शुरू करूं और कहा समाप्त करूं।"

इतना कह कर उन्होंने लाल बहादुर शास्त्री के गुणों की चरचा शुरू की और दर्जनों किस्से सुना डाले। बातें सुनकर बड़ा अचरज हुआ और यह समझ में न आया कि इतना छोटा, गरीब बालक भारत का प्रधान मंत्री हो कैसे गया। मै ने पूछा, "अलगूराय जी, उनमें ऐसी क्या खास बात थी जो उन्होंने इतनी सफलता पाई?" जवाब मिला, "अरे भाई, उनमें बहुत से गुण तो थे ही लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि उन पर भगवान की असीम कृपा थी।"

बात समझ में आई। इसमें कोई शक नही कि वह बड़े भाग्यशाली पुरुष थे। शान से जिए। जम कर देश की सेवा की और शान से मरे। कितने आदमियों की मृत्यु इतनी शान से होती है? बिना कोई शारीरिक दुख झेले संसार से उस समय चले गए जब सारा देश उनके गुणों की दुन्दुभी बजा रहा था।

१६४७ में इलाहाबाद में खबर उड़ गई कि लाल बहादुर जी का देहान्त हो गया। सारे नगर में गम के बादल छा गए। कई लोग फूट कर रो पड़े। धड़ाधड़ लखनऊ फोन किए गए। कुछ देर बाद पता चला कि खबर बिल्कुल बेबुनियाद है। यह सुनकर बड़ी राहत हुई। मैं ने उनको 'जिन्दा' हो जाने पर एक खत लिखा और बधाई दी। शायद वह उस समय उत्तर प्रदेश सरकार में मंत्री थे। उन्होंने मुझे अगस्त २७, १६४७ को एक खत में लिखा

प्रिय टंडन,

स्वतंत्र भारत में अगरेजी में क्या लिखू ? आपने तो मुझे, मार ही दिया था और फिर खुद जिन्दा भी कर दिया। अभी तो यही चाहिए था। कुछ दिन बाद दूसरी बात शायद आप न कर सकेंगे। इलाहाबाद आने पर मिलूंगा। आप लखनऊ आए और भेट नही हुई इसका अफसोस हुआ।

आपका,

लाल बहादुर शास्त्री

इस पत्र में उन्होंने कुछ व्यक्तिगत बातें भी लिखी थीं। जब वह प्रधान मंत्री हो गए तो मैं एक दिन प० कमलापति त्रिपाठी के साथ इसी पत्र को एक लिफाफे में बंद करके उनके पास ले गया और कहा, "एक वजीरे आजम ने यह खत आपके नाम दिया है।"

"आपकी किस वजीरे आजम से इतनी ज्यादा दोस्ती है कि आप खत लिखा लाए," उन्होंने त्रिपाठी जी की ओर देखकर मुझसे मुसकुराते हुए पूछा। मैंने उनसे कहा कि "मैं एक वजीरे आजम को बहुत अच्छी तरह जानता हूं।" उन्होंने खत खोला और उसमें अपना पत्र पाया। एक दम हंस पड़े और बोले, "तुम बड़े शरारती हो, इस पत्र को अभी तक रक्खे हो ?"

दूसरों की बात समझना और नम्रता से अपनी बात समझाना शास्त्री जी ने अपना मजहब बना रखा था। कई साल हुए य० पी० पत्रकार

नियन का अधिवेशन वाराणसी में हुआ था। मैं उस सम्मेलन का भापति था और शास्त्री जी ने उसका उद्घाटन किया था। स समय वह रेलवे मंत्री थे। उन्हें इस बात का ख्याल आया कि कहीं सा न हो कि उनके और मेरे भाषणों में तीव्र मतभेद हो जाय। न्होंने वाराणसी के स्टेशन मास्टर को इत्तला करवाई कि वह मेरे भाषण की एक प्रति लेकर वाराणसी से दस पांच स्टेशन पहले उनको हुंचा दें। ऐसा ही किया गया। जब वह उद्घाटन करने आए तो न्होंने कहा कि सभापति के भाषण को पढ़ लिया है और उनसे त्तिफाक करते हैं। जो दो चार बातों पर थोडा मतभेद था उसे न्होंने अपने तरीकों से बड़ी नम्रता से पेश किया। जलसा खत्म होने के बाद मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले, "कहिए, कोई गलती तो नहीं हो गई?" यह सुनकर मैं चकित रह गया। मैं ने कहा, "आप मुझे क्यों लज्जित करते हैं। आपने मेरे भाषण की प्रति मंगवाने का क्यों कष्ट किया?"

जेल के अन्दर भी लाल बहादुर जी लीडरी ही करते थे। सबके झगड़े निपटाते थे। जेल के आफिसर भी उनकी तारीफ करते थे। मुझे यह देखकर अक्सर कुछ जलन होती थी। मैं ने उनसे एक दिन पूछा कि उनमें क्या जादू है और लोग उनको, क्यों इतना मानते हैं। वह चुपचाप खड़े मुसकुराते रहे और कुछ जवाब न दिया। मैं ने उनसे कहा, "शास्त्री जी, आप इतने भाग्यवान हैं कि यदि आपके माथे से कोई माथा रगड़ ले तो भाग्यवान हो जाये। आप मुझसे ५ रु० ले लीजिए और अपने माथे से माथा रगड़ लेने दीजिए।"

शास्त्री जी ठहाका मार हंसे और बोले, "पांच रुपए मुफ्त में कहां से मार लाए। उन्हें क्यों खोना चाहते हो!"

दिसम्बर १९६५ में लाल बहादुर जी इलाहाबाद आए। मैं बमरौली हवाई अड्डे पर उनके स्वागत के लिए न जा सका। मैं और मेरे मित्र पं० श्यामा चरण काला और एक छोटा बालक मजय

काला सड़क पर पुरुषोत्तम पार्क के सामने लाल बहादुर जी का स्वागत करने खड़े हो गए। मेरे अगल बगल मूंगफली और रिक्शा वाले खड़े थे। थोड़ी देर बाद प्रधान मंत्री की मोटर और मोटरों का तांता नज़र आया। मोटरों में हर तरह के आदमी भरे थे और रोब के साथ सड़क पर खड़े हुए लोगों की ओर देख रहे थे। जब प्रधान मंत्री की कार हमारे नजदीक पहुंची तो मुझे भीड़ में टोप लगाए खड़े देखकर वह हंस पड़े और मेरी तरफ मुड़कर बोले, "तुम यहां कैसे ?"

मैं जवाब भी न दे सका और मोटर आगे बढ़ गई। काला साहब यह देखकर चकित रह गए और बोले, "यह क्या ? प्रधान मंत्री तो मोटर में एक दम घूम गए और चलती मोटर में तुमसे बात करने लगे।"

मैं ने उन्हें बताया कि वह इतने बड़े जुलूस में भी अपने आप को खुदा नहीं समझते। लाल बहादुर जी इंसान हैं। हर समय इंसान की तरह बरताव करते हैं। मुझे इस जगह पर अपने स्वागत के लिए खड़े देखकर उन्हें जरा ताज्जुब हुआ और कुछ हंसी आ गई। जैसे और किसी समय बोलते वैसे ही वह उस समय बोल पड़े जब कि सैकड़ों आदमी उनकी जै जै कार कर रहे थे।

काला साहब ने सर झुलाते हुए कहा, "तुम ठीक ही कहते हो। शास्त्री जी को बिल्कुल गरूर नहीं है।"

शास्त्री जी एक सच्चे और समझदार साथी थे। उनमें लीडरी की बू बिल्कुल न थी। कुछ अफसरानों ने मुझे बताया कि शास्त्री जी के साथ काम करने में उन्हें बड़ा मजा आता था। वे उन लोगों को अपना साथी समझते थे। शास्त्री जी का कहना था, "जब किसी से काम लेना हो तो उसकी ईमानदारी और अक्ल पर बिना जरूरत शक व शुबहा नहीं करनी चाहिए। आदमी काम तभी कर सकता है जब उसके साथियों का उसमें विश्वास हो।"

बहुत से लोगों का काफी समय अब भी गुजरता है शास्त्री जी को याद करने में और उन्हें भुलाने में। उन्हें भुलाने में यादों का तूफान

ा घेरता है और याद करने में स्मृतियों का सिलसिला खत्म ही नहीं ता । जिन्हें उन्हें नजदीक से देखने और समझने का सौभाग्य प्राप्त था वह तो सालों तक उनकी यादों की जंजीरों में बंधे रहेंगे और ह यकीन करना मुश्किल होगा कि वह नहीं रहे । एक दिन वह स्वर्गीय ाष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी के साथ इलाहाबाद आए थे । राजेन्द्र ाबू को प्रयाग महिला विद्यापीठ के एक जलसे में सदारत करनी थी । न्हें वह जल्दी से अन्दर पहुंचाकर मेरे बंगले पर फौरन पहुंचे । रवाजा खटखटाया । मैं एकदम बाहर आया । "कहिए आपके याग आने का प्रोग्राम तो था नहीं," मैं ने पूछा ।

"बातचीत बाद में करेंगे, जल्दी से चाय पिलाओ, अभी वापस ाना है," उन्होंने कहा ।

"मंत्री आप हो गए हैं । अब आप चाय पिलाएं या मैं," मैं ने समकर पूछा । चाय फौरन बनी । बातचीत भी हुई ।

उनकी बेतकल्लुफी मुझे बहुत पसन्द आई और मैं सोचने लगा कि न्हें प्रभुता पाने पर भी गरूर न था और दोस्तों के साथ दोस्ती ही निभाते थे । चलते समय मैं ने पूछा, "अब कब आइएगा ? न्योते ा इंतजार न कीजिएगा ।"

जवाब मिला, "आप चाहे बुलाएं चाहे न बुलाएं, मौका लगने पर तो आ ही जाऊंगा ।" बात के पक्के थे । जब जब मौका लगा, आए ।

शास्त्री जी बहुत ही ईमानदार आदमी थे और बड़े स्वाभिमानी े । उन्होंने कभी किसी के सामने किसी चीज के लिए हाथ नहीं फैलाया । जब जब नेहरू ने उन्हें बड़े बड़े ओहदों पर रखा उन्होंने सदैव उन सब ओहदों को बड़े संकोच और नम्रता से लिया । "मैं ने बिना सत्ता के देश सेवा करना सीखा है," उन्होंने एक बार कहा था । शास्त्री जी बड़ी सच्चाई और लगन से काम करते थे । समझौता करने और कराने में बड़े निपुण थे लेकिन सिद्धान्तों पर कभी समझौता नहीं करते थे ।

वाकया है हरिश्चन्द्र हाई स्कूल बनारस का; सन् था १६१८। स्कूल के पास एक चाट वाला कुछ चीजें बेच रहा था। लाल बहादुर के दोस्त लोग और एक खिलेदार चाट, मिठाई खरीद कर खूब गपा-गप उड़ा रहे थे। लाल बहादुर टिकटिकी लगाकर उन सबकी ओर देख रहे थे। स्कूल के प्रमुख अध्यापक प० निष्कामेश्वर मिश्र ने यह दृश्य देखा और उन्होंने पूछा, "लाल बहादुर, तुम कुछ नहीं खाते ?"

बालक ने उत्तर दिया, "मैं नहीं खाता।" इसका मतलब यह नहीं था कि वह कुछ खाना नहीं चाहता था। सवाल यह था कि कैसे खाए। गरीब बाप का बेटा था। पैसे जेब में थे नहीं। किसी से माग कर खाने का सवाल उठना ही न था। गरीबी तो थी लेकिन स्वाभिमान की कमी तो थी नहीं। निष्कामेश्वर जी ने चाट लेकर लाल बहादुर जी को दी और उन्होंने खाई। प्रकाण्ड मनीषि अध्यापक ने लाल बहादुर में उसी दिन होनहारता के लक्षण देख लिए। यह किस्सा मुझे लाल बहादुर के मित्र अलगूराय शास्त्री ने बताया था।

इलाहाबाद में एक बार उनको बड़े जोर का हार्ट अटेक हो गया। लोग उनको देखने जाते थे। मैं उनको फूल और किताबें अक्सर भेज देता था। मैं ने उन्हें एक दिन एक पत्र भेजा और उसमें लिखा, "जो आपको देखने जाते हैं वह आप पर बड़े मेहरबान हैं मगर जो आपको इस हालत में देखने नहीं जाते वह ज्यादा मेहरबान हैं। मैं अपने को ज्यादा मेहरबानी की लिस्ट में रख रहा हूं। मैं सोचता हूं आप नाराज नहीं होंगे।"

कुछ दिन के बाद एक सज्जन जो उनकी सेवा करते थे उन्होंने कहा कि लाल बहादुर जी खत पढ़ कर हंस पड़े और कहा कि एक दिन टंडन को बुलाना है। हम बुलाए गए। हमें देखते ही उन्होंने बात-चीत शुरू कर दी। मैंने अपने मुंह पर उंगली रखकर न बोलने का इशारा किया। लाल बहादुर जी बोले, "तुम डरो नहीं। मैं बिल्कुल

हो गया हूं । इस बीमारी ने काफी सजा दे दी है । क्या हाल है, कुछ सुनाओ ।"

शास्त्री जी ने अपनी मिसाल से यह साबित कर दिया था कि रतवर्ष में बड़े से बड़े पद पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक नही है आदमी विदेशों में शिक्षा पाए, बड़े बड़े मकानों में रहे, धनी हो और के पास नाना प्रकार के साधन हों । इस सीधे सादे इंसान ने अपनी ानदारी, सादगी और देशभक्ति का सहारा लेकर प्रधान मंत्री के पद प्राप्त किया और नवजवानों के लिए एक जोरदार मिसाल हो गया । स्त्री जी प्रधान मंत्री होने से ही संतुष्ट नही थे । उनकी हार्दिक ठा थी कि वह जवाहर लाल नेहरू की नीतियों का पालन कर सकें र उनके उठाए हुए झंडे को बुलन्द रख सकें और उन्होंने ऐसा ही या । उनका जीवन सफलता की एक शानदार कहानी है ।

उनकी खूबियां निराली थीं और वह एक अनोखे इंसान थे । होंने अपने गुणों के ऊपर नम्रता का लबादा डाल रखा था जिसकी ह से कभी कभी लोग उनकी खूबियों को भूल जाते थे । इतिहास बहुत से नेताओं के आखिरी साल निराशा या असफलता में कटे । तों के खिलाफ बगावतें हुई । बहुतों की ताकत का खात्मा हो गया । तों या उनके मित्रों ने साथ छोड़ दिया । बहुतों का किस्मत ने य नही दिया परन्तु यह बातें लाल बहादुर शास्त्री के जीवन में नही ई । उनका जीवन बड़ी शान से कटा और आखिरी समय तक उनके थी और उनके देशवासी उनकी जयजयकार करते रहे । उन्होंने सार को उस समय छोड़ा जब सारा देश उनके प्रशंसा के गीत गा हा था । वह हमारे बीच से तब गए जब वह अपनी सफलता की चावस्था पर थे । उनके लिये तो ठीक ही हुआ, परन्तु हम लोग ल मसोस कर रह गए ।

इंदिरा गांधी

विमान-यात्रा में अध्ययन

इंदिरा पहली महिला है भारत में, और दूसरी एशिया में, जो प्रधान मंत्री हुई है। इंदिरा देश में तीसरी महिला है जो कांग्रेस की अध्यक्षा हुई थी। इससे पहले डा० एनी बेसेन्ट और सरोजिनी नायडू ने इस पद को ग्रहण किया था। उनका जन्म १९ नवम्बर, १९१७ में हुआ था। अक्टूबर २६ सन् १९३० में नेहरू ने इंदिरा को एक पत्र में लिखा था, "बेटी क्या तुम्हें याद है कि जब तुमने पहली मर्तबा 'जोन ऑफ आर्क' की कहानी पढ़ी थी तब तुम बड़ी प्रभावित हुई थी और तुम्हारी भी यह महत्वाकांक्षा थी कि तुम भी उनकी तरह कुछ काम करोगी?" इंदिरा ने खुद भी कहा कि जब वह आठ साल की थी तब फ्रांस गई थी। उन्होंने उस समय 'जोन ऑफ आर्क' के बारे में पढ़ा था और उससे उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली थी। गांधी और टैगोर ने भी उनके जीवन पर बड़ी गहरी छाप लगाई थी। उन्होंने एक बार कहा कि बापू ने उन्हें सच्चाई और निर्भयता सिखाई। टैगोर के बारे में [illegible]न्होंने एक बार एक विदेशी लेखक को बताया "मुझे टैगोर ने बड़ा [illegible] किया। शान्ति निकेतन जाने के पहले मुझे संगीत और

नृत्य का कोई ज्ञान न था । टैगोर को देखकर एक शान्ति का वातावरण हो जाता था" ।

पंडित मोतीलाल के घर में एक मुन्शी मुबारक अली काम करते थे और आनन्द भवन में सब लोग उनकी इज्जत करते थे । जब वह मृत्यु शैया पर पड़े थे एक दिन उन्हें मोतीलाल जी देखने गए । मुबारक अली साहब आनन्द भवन में रहते थे । मोतीलाल जी को देखकर बोले, "भाई साहब, मैं जवाहर लाल के बच्चे को हाथ में लेकर खिलाए बिना नहीं मर सकता ।" और ऐसा ही हुआ । कुछ दिन के बाद इंदिरा का जन्म हुआ और एक चादर में लपेट कर मुबारक अली के पास वे ले जाई गई । बच्चे को देखकर वे बहुत खुश हुए और उनकी आंखों से खुशी के आंसू टपकने लगे । बच्चे की तरफ देखते हुए उन्होंने कहा, "मुबारक हो भाई साहब ! खुदा करे बच्चे को जीवन में सब सुख मिले और वह जवाहर लाल के नाम को ऐसे ही चमकाए जैसे जवाहर लाल ने आपके नाम को रोशन किया । मोतीलाल का पोता खुदा की मेहरबानी से नेहरू खानदान की शान बढ़ाएगा ।"

यह कहते कहते मुबारक अली साहब बेहोश हो गए और उनका देहान्त हो गया । उन्हें यह नहीं मालूम था कि मोतीलाल के पोता नहीं पोती हुई है, मगर जो भविष्यवाणी मुबारक अली ने की थी वह सही निकली ।

इंदिरा कुछ दिनों शान्ति निकेतन में पढ़ी थी और रवीन्द्रनाथ टैगोर उनसे बहुत प्रभावित हुए थे । अप्रैल २० सन् १९३५ को जब वह शान्ति निकेतन से चली गई तो रविन्द्रनाथ टैगोर ने एक पत्र में जवाहर लाल जी को लिखा, "हम लोगों को इंदिरा के जाने से दुख हुआ क्योंकि वह शान्ति निकेतन की पूंजी थी । मैं ने उसे यहां बड़े नजदीक से देखा था और मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुमने उसे इस भांति पाला पोसा है और शिक्षा दी है । उसके सारे गुरुजन उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं और सब विद्यार्थी उसको बहुत पसन्द करते हैं ।

मैं आशा करता हूं कि तुम उसे कुछ दिनों बाद शान्ति निकेतन भि
भेज सकोगे । उसमें तुम्हारा भी हित है ।"

इंदिरा कमसुखन है । ज्यादा बातचीत करने में विश्वास न
करती । बहुत दिनों तक तो यह मालूम होता था कि शायद वह रा
नीति के पास न फटकेगी । परन्तु परिस्थितियों के कारण राजनी
में आना पड़ा । उन्होंने धीरे धीरे ख्याति पाई और भाषण देने
महारत हासिल की । वह आहिस्ता आहिस्ता बड़े इतमीनान
बोलती है और सुनने वाले इसे पसन्द करते हैं । कई सभाओं के ब
इलाहाबाद के किसानों ने मुझसे कई बार कहा, "इन्दु जी बहुत अच्
तरह बोलती हैं और पते की बात कहती हैं ।"

इंदिरा जी-हुजूरी पसन्द नहीं करती । वह चाहती है कि लो
निर्भय होकर काम करें । उनमें एक बड़ी शराफत है और उनका ए
अनोखा व्यक्तित्व है । शायद मंत्रियों में वही एक ऐसी है जिनव
हजारों की तादाद में लोग सुनने को आते हैं । उनके मधुर माध्य औ
समझदारी की बातों से लोग प्रभावित होते हैं । कुछ लोग समझते हैं वि
वह बड़ी जिद्दी है लेकिन यह बात नहीं है । कभी कभी ऐसा मालूम
इसलिए होता है क्योंकि वह बहुत सफाई से बात करती है । एक दि
आनन्द भवन में मुझसे बातचीत करते हुए उन्होंने कहा, "तुम हर बार
में उजलत करते हो ।" जब मैंने नम्रता से अपनी सब बात समझाई
तो वह खड़ी होकर सोचने लगीं और हंसकर कहा, "मैं सोचती हूं कि
बात तुम्हारी भी ठीक है लेकिन हम सब को किसी बात पर जल्दी
उत्तेजित नहीं होना चाहिए ।" ऐसी समझदारी की बात में हमें क्या
उज्र हो सकता था ?

जब वह छोटी थीं तो उनके दादा ने उनसे कहा था, "दो तरह के
आदमी होते हैं । एक तो वह जो काम करते हैं और दूसरे वह जो
काम हो जाने का श्रेय लेते हैं । मेरी बेटी तुम खूब काम करना ।"
अपने दादा की बात उन्होंने बचपन में ही कंठ कर ली थी । जब

१९६३ में उनकी बुआ फूलपुर से चुनाव लड़ी थी तो उन्होंने ऐसा काम किया जो बहुत कम लोग कर सकते हैं। मैंने उनके साथ कई बार दौरा किया और मैंने देखा कि वह अपने आराम की बिल्कुल परवाह नहीं करतीं थी। वह इलाहाबाद के उन उन कोने में चुनाव के दौरान में गई जहां बड़े बड़े धाकड़ नेता और कार्यकर्ता नही गए। "इंदिरा जी आपके यहां आने की क्या जरूरत थी ? कुछ थोड़े ही वोट तो यहा है। मुखालिफ लोग यहां कभी नहीं आए न आवेंगे।" मैंने उनसे एक दिन एक गाव में कहा। वह मेरी ओर देखकर बोली, "कोई नही आया इसलिए मिलना और भी जरूरी है। जरा इन विचारों का भी हाल तो पूछो। इन लोगों के पास जमीन नही है। अच्छा, यह सोचकर बताना कि मैं उनके लिए क्या कर सकती हूं।"

इंदिरा एक बड़ी वीर महिला है। एक मरतबा १९४७ में हिन्दू-मुसलिम झगड़ों के दरमियान में करीब सौ आदमी एक आदमी का पीछा कर रहे थे और उसे मार डालने पर उतारू थे। जब इंदिरा ने देखा तो एक दम अपनी मोटर रोक दी और नंगे पैर मजमें में घुस गई। "इंदु, तुम वहां मत जाओ" दूसरे लोग उनको समझाते रहे परन्तु वह जान पर खेल कर भीड़ के पास पहुंच गई और बड़े इतमीनान से कहा, "तुम इस आदमी के प्राण नहीं ले सकते यह एक बड़ी निकम्मी बात है।" यह सुन कर लोग खामोश हो गए और बड़बड़ाते हुए उस आदमी को छोड़कर चले गए। इंदिरा जख्मी आदमी को अस्पताल ले गई और उसका इलाज करवाया।

गांधी जी इंदिरा को बहुत प्यार करते थे और उनके स्वास्थ्य के बारे में सदैव चिंतित रहते थे। एक बार इंदिरा बापू को मिलने यर्वदा जेल गई। गांधी जी को यह देखकर खुशी हुई कि उनकी तन्दुरस्ती अच्छी है और वह खुश रहती है। उन्होंने फौरन जवाहर लाल को तार दिया। "इंदु से मुलाकात हुई वह ठीक है। उस पर अब कुछ गोश्त चढ़ रहा है।" जब जवाहर लाल को यह तार मिला वह बहुत हंसे और तार इंदिरा को दिखाया।

एक दिन इंदिरा 'कनाट प्लेस,' दिल्ली में गई। एक लड़का उनके पीछे पड़ गया कि कंघी खरीद लो। उन्होंने बहुत देर तक उसकी बात न सुनी परन्तु परेशान होकर बाद में खरीद ली और कहा, "मैं इसे इसलिए नहीं खरीद रही हूं कि मुझे इसकी जरूरत है बल्कि इसलिए कि इससे तुम्हारी मदद होगी।" वह एक सुन्दर बच्चा था। इंदिरा ने उससे बात करना शुरू कर दिया और पूछा कि वह किस स्कूल में पढ़ता है। उसने बताया कि वह किसी स्कूल में नहीं जाता। दिन भर काम करता है और २ रु० रोज कमाता है। "बताइए कोई ऐसे लड़के हैं जो स्कूल जाते हों और दो रुपए कमाते हों?" उसने पूछा।

इंदिरा ने जवाब देते हुए कहा कि जो लड़के पढ़ते हैं और पढाई खतम करने के बाद जब कमाते हैं तो तुमसे ज्यादा कमाते हैं और उनकी पढ़ाई जीवन भर काम आती है। जब तुम करीब तीस साल के होगे और तुम्हारे परिवार होगा तब तुम क्या करोगे। क्या तब भी कंघी ही बेचते रहोगे?"

उस लड़के से बात करने के बाद उन्हें एक विचार आया और उन्होंने

...ब बच्चों को भोजन परोसते हुए

दोस्तों और सरकार की मदद से एक 'बाल सहयोग' नामक संस्था दिल्ली में खोली और उसमें ऐसे बालक जो इधर उधर घूमते हैं उनको पढ़ाने और काम सिखाने का अच्छा इंतजाम किया। खूब जोरों से काम चला। इंदिरा अपने पिता की तरह बच्चों को बहुत प्यार करती हैं और ईश्वर से उनकी यही प्रार्थना है कि सब बालकों को बराबर से जीवन में मौका मिले पढ़ने और काम करने का। वह बच्चों की भलाई के कामों को हमेशा बढ़ावा देती हैं।

इंदिरा अपनी मां को बहुत प्यार करती थी उनकी याद उन्हें बहुत सताती है। उन्होंने उनके बारे में लिखा है, "डांटती तो वह कभी नहीं थी, न ऊंची आवाज से बोलती थी लेकिन उनका प्रभाव ऐसा था कि जो कहती थी वही होता था। हमारे यहां पं० मदन मोहन मालवीय के भतीजे संस्कृत पढ़ाने आते थे। वह मां का बहुत आदर करते थे और उनसे डरते भी थे। मुझे बड़ा आश्चर्य भी होता था कि इतनी मधुर, दुबली पतली औरत से डर कैसा? पंडित जी कहते थे 'अरे, तुम्हें नहीं मालूम यह बड़ी शक्ति की देवी है जो चाहे कर सकती है।' इस पर मां हमेशा हंसती थीं। परन्तु कुछ शक्ति उनमें जरूर थी जो भी उनसे मिलता था उस पर गहरा प्रभाव पड़ता था। मैं तो मानती हूं कि मेरे पिता जी पर भी उनके विचारों का गहरा असर हुआ। अक्सर उनके पास साधू महात्मा भी आकर बैठते थे। मां की भक्ति बहुत गहरी थी। रोज हम लोगों को गीता और रामायण का पाठ करवाती थी। जैसे जैसे उनकी उम्र बढ़ती गई उनकी यह भक्ति और एक अन्दरूनी शक्ति बढ़ती गई। बाद में वह अक्सर नदी के किनारे समाधि में घंटों बैठी रहती थीं।"

एक महत्वपूर्ण घटना सुनिए जो इंदिरा की गरीबों के लिए हमदर्दी पर काफी रोशनी डालती है। हिन्दुस्तान के बंटवारे के बाद उनके घर एक शरणार्थी आया। उसके एक लड़की थी। उसके दोनों पैर बालकपन ही में कट गए थे। वह अपने आपको हाथों के बल

घसीटती थी। उसे देखकर इंदिरा का जी भर आया और उन्होंने यह निश्चय किया कि वह उस लड़की की सहायता करेंगी। बहुत खोज के बाद पता चला कि पूना में एक फौजी अस्पताल है जहां नकली हाथ-पैर बनते हैं मगर सिर्फ वहां फौज वालों की ही मदद होती थी। इंदिरा ने बड़ी कोशिश के बाद लड़की, सत्या को वहां भरती कराया और उसके पैर लगवा दिए। उन्होंने यह भी कोशिश करके करवा दिया कि फौजी लोगों के अलावा वहां और लोगों को भी सहायता मिले। सत्या चलने लगी और उसने काम करना सीखा। एक दिन घर आकर उसने इंदिरा को बताया कि उसकी शादी तै हो गई है। उसके चेहरे पर खुशी का सूरज खिला हुआ था। खुशी की किरणें उनके ऊपर पड़ रही थीं जो वहां उस समय मौजूद थे। "जब कभी मैं थोड़ा निराश होती हूं और बड़े बड़े कामों में सफलता कम होती दिखाई देती है तब मुझे सत्या की उस दिन की खुशी की याद आ जाती है और मैं खुश होती हूं और मेरी हिम्मत बढ़ती है," इंदिरा ने बताया।

जवाहर लाल जी को अपनी बेटी की पढ़ाई लिखाई का बड़ा ख्याल रहता था। वह चुन चुन कर इंदिरा को किताबें पढ़ाते थे और समझाते थे। १९३५ में नए साल के अवसर पर उन्होंने करीब हजार पन्ने की एक किताब अल्मोड़ा जेल से इंदिरा को भेजी। उन्हें इस बात का भय था कि कहीं उनकी बच्ची इतनी मोटी और मुश्किल किताब देखकर घबड़ा न जाय और इसलिए उन्होंने पुस्तक के ऊपर लिखा था, "नए साल के अवसर पर प्रेम और शुभकामनाओं के साथ इस आशा में कि 'मार्टन्स ऑफ लाइफ' का अध्ययन तुम्हें जीवन की सबसे बड़ी कला (रहने की कला) में सहायता करेगा।

"इस किताब के भारीपन और मोटेपन से घबड़ाना नहीं। तुम्हें तुम्हें एक छोर से दूसरे छोर तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं क्योंकि ... ने में तुम बहुत बोर हो जाओगी। जो अध्याय तुम्हें दिलचस्प ... उन्हें पढ़ो और उससे तुम्हें जीवन के विस्तार और विकास का

अंदाजा होगा। बाद में शायद तुम पूरी किताब पढ़ना पसन्द करोगी। जरूर पढ़ना चाहिए।"

उन्होंने मुझे एक दिन बड़ा दिलचस्प किस्सा सुनाया। वह एक मर्तबा चुनाव के दौरान में मध्य प्रदेश गईं। एक मीटिंग में लोग रात में बारह बजे तक इंतजार करते रहे। वहां से श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र चुनाव के लिए उम्मीदवार थे। जब १२ बजे रात तक इंदिरा न पहुंची तो ज्यादातर लोग निराश होकर वापस चले गए। किसी कारण वह समय से न पहुंच सकीं मगर जब वह ४ बजे सुबह मीटिंग में पहुंची तो मीटिंग हुई और धीरे धीरे लोग वापस आ गए। उनकी आवाज ने लोगों को जलसे में खींच लिया।

इससे भी ज्यादा एक दिलचस्प वाक्या सुनिए। १९५७ के चुनाव में इंदिरा पंजाब गई थी। बिना उनसे पूछे लोगों ने सरदार बल्देव सिंह के निर्वाचन क्षेत्र में एक मीटिंग रख दी। समय कहा से लाए? न जायें तो बल्देव सिंह जी बुरा मानते। सुबह ६ बजे जाड़े में मीटिंग रक्खी गई। जब वह वहां पहुंची तो कोई न था। सिर्फ दरियां बिछी थीं और ओस की बूंदें पड़ी थीं। उन्होंने बोलना शुरू कर दिया। कुछ देर के अन्दर एक अच्छी खासी भीड़ जमा हो गई। इंदिरा भी अपने पिता की तरह जनता पर जादू करती हैं। इंदिरा को जनता से प्रेम है। वह उनकी मुसीबतों को समझती हैं और उनकी बड़ी इच्छा है कि देश से गरीबी जल्द से जल्द दूर हो जाये और लोग खुशहाल हों। काम मुश्किल है परन्तु वह सफल होने की आशा रखती हैं और उसके लिए प्रयास करती हैं।

वी० वी० गिरि

भारत की राजनीति में कुछ ही लोग होंगे जिन्होंने बराबर कोई न कोई पद ग्रहण किया है और सफलता पाई है । उनमें से एक हमारे राष्ट्रपति श्री गिरि हैं । वह सबसे अच्छी तरह से मिलते हैं और भाई चारे का व्यवहार करते हैं । वह बातचीत में बड़े मुंहफट हैं । उन्होंने मुझसे एक बार लखनऊ में कहा कि वह सफाई से बात इसलिये करते हैं क्योंकि उन्हें किसी से कुछ छिपाना नहीं, न तिकड़मबाजी करना है। कभी कभी लोग उनकी खरी बात से नाराज भी हो जाते हैं ।

श्री गिरि की जिन्दगी का सबसे शानदार लमहा १६३७ में था जब उन्होंने मद्रास में बोवली के राजा, जो उस समय मुख्य मंत्री और

वी० वी० गिरि, लेखक के साथ

जस्टिस पार्टी के नेता थे, उनको एसेम्बली के चुनाव में हराया था। राजा साहब की उन दिनो बड़ी शान थी और उन्हें अंग्रेजी सरकार का बड़ा सहारा था। श्री गिरि ने उन्हें हरा कर बड़ी ख्याति पाई। मजदूरो और बहुत से कार्यकर्ताओं ने इस चुनाव में जी जान से उनकी मदद की थी। गिरि साहब को इस बात का बड़ा फक्र है कि वह वकील है और उनके परिवार में कई पीढियों से वकालत का पेशा रहा है।

मुझे नैनीताल, राज भवन में, जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे, उनके साथ ठहरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह अपने मेहमानों की बड़ी खातिर तवाजो करते हैं। एक दिन वह अचानक मेरे कमरे में आ पहुंचे और बोले, "कोई तकलीफ तो नही है?" मैंने उत्तर दिया, "मान्यवर, जरूरत से ज्यादा आराम है।" "ऐसा ही होना चाहिये," उन्होंने कहा और मुझे बाग में ले गए। श्री गिरि ने कई मजेदार बातें राज गोपालाचारी जी के बारे में सुनाई और उससे मुझे पता चला कि वह "राजा जी" के बड़े भक्त हैं और उनका लोहा मानते हैं। बहुत दिन हुए उनका हाथ देखकर एक सज्जन ने कहा था कि श्री गिरि भारत के राष्ट्रपति होंगे। यह भविष्यवाणी सही साबित हुई।

श्री गिरि ने राज्यपाल की हैसियत से उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों में बड़ी दिलचस्पी ली थी। उनका एक बार तीव्र मतभेद उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री से किसी एक विश्वविद्यालय के बारे में हो गया था और खबर उड़ गई कि श्री गिरि इस्तीफा दे देंगे, मगर उनकी बात मान ली गई। उन्होंने एक प्रोफेसर साहब को एक विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी का सदस्य सरकार की मरजी के विरुद्ध नियुक्त किया था।

गिरि साहब ने एक बार कहा था कि वह उत्तर प्रदेश सरकार के "स्लीपिंग पार्टनर" (सोने वाले साथी) नहीं है। उन्होने यह भी कहा था कि जनता को यह जानना चाहिये कि राज्यपाल की कही

हुई बात कानून के बराबर है । वह अपने पद की सीमाओं को जानते थे परन्तु जितना अधिकार संविधान ने दिया था उसका वह पूरा इस्तेमाल करते थे ।

श्री गिरि अनुशासनहीनता के कट्टर विरोधी हैं । एक बार प्रयाग विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों ने बड़ा हंगामा मचाया जिससे संस्था की मान मर्यादा को बड़ा धक्का पहुंचा । प्रयाग उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री मथम और मैं ने गिरि साहब को इलाहाबाद युनिवर्सिटी की कार्यकारिणी की सदस्यता से त्यागपत्र भेज दिया । गिरि साहब ने हम लोगों को सब्र से काम लेने को कहा और मुझे उन्होंने एक पत्र में लिखा, "मैं तुम्हारी और प्रोफेसर देव की बात समझता हूं । तुम दोस्तों के साथ वफादारी निभाते हो । तुम्हारे कार्यकारिणी में रहने से उसमें मजबूती आती है । कुछ दिनों तक हमें चुपचाप रहना चाहिये । लोगों को हमारे बारे में हमारे कामों से नतीजा निकालना चाहिये ।" उन्होंने सरकार से कड़ी कार्यवाही करने को कहा और ऐसा ही हुआ । एक दम विद्यार्थी आन्दोलन जोरों के साथ दबा दिया गया ।

श्री गिरि ६५ साल की उम्र तक टेनिस खेलते थे । उनका परिवार बड़ा है और वह हर एक की खूब अच्छी तरह देखभाल करते हैं । गिरि साहब का हलका शरीर नहीं है परन्तु वह तेज चलते हैं और जोरों से काम करते हैं । जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे तो सुबह तड़के उठकर काम में जुट जाते थे और नौ बजे सुबह तक सारा जरूरी काम निपटा देते थे । १० बजे सुबह वह नैनीताल बोट क्लब में जाकर बैठ जाते थे और हर एक आदमी उनसे मिल सकता था । दर्जनों आदमी उनसे उस समय मिलने आते थे और उनकी मेहरबानी और तरजों तरीके की तारीफ करते थे । एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुम्हें मालूम है कि यह लोग हमारे पास क्यों आते हैं ?" खुद जवाब देते हुये उन्होंने बताया कि वह जहां तक होता है किसी को

"ना" नहीं करते और किसी का दिल नहीं दुखाते। जहां तक बन पड़ता है लोगों की सहायता करते हैं।

गिरि जी उस परिवार में पैदा हुये हैं जिसमें सब लोग दूसरों की खातिर करने में माहिर रहे हैं। गिरि साहब लोगो को खिलाने पिलाने में बड़ा आनन्द लेते हैं। जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे तो शायद ही कोई उनसे मिलने वाला बिना कुछ खाए पिए राज भवन से वापस आया हो। एक दिन मैं लखनऊ में उनसे मिलने गया। फौरन ही उन्होंने खाने की सामग्री मंगवाई और जब मैं ने कहा कि मैं कुछ नही खाना चाहता तो वे बोले, "यहा आने पर हर आदमी को कुछ न कुछ खाने की सजा मिलती है। तुम बिना चाय पिए नही जा सकते। मैं तुम्हारे साथ बैठकर अब चौथी बार चाय पीऊंगा।" उनके सारे घर वाले मेहमाननवाजी के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

श्री गिरि यू० पी० के सबसे ज्यादा लोकप्रिय राज्यपाल थे। वह राज्य सभा के सभापति भी रह चुके हैं। सदस्यों का यह भाग्य था कि उनका सभापति इतना योग्य और समझदार व्यक्ति था। गिरि साहब को लोग इसलिये बहुत पसन्द करते हैं कि वह सबकी बात ध्यान और धीरज के साथ सुनते हैं और उनका दुःख बटाने की सदैव चेष्टा करते हैं।

गिरि साहब और उनके पिता जोगैया पानतुलू एक दूसरे को बड़ा प्रेम और आदर करते थे और एक दूसरे पर कुरबान रहते थे। वे दोनों मित्र और साथी का जीवन व्यतीत करते थे। जिन लोगों ने उन दोनों को देखा है उनका कहना है कि यह बताना कठिन था कि पिता पुत्र को ज्यादा प्यार करते थे या पुत्र, पिता को!

अगर आप गिरि साहब से निहायत दिलचस्प बातें सुनना चाहते हैं तो आप उनसे इस बात का आग्रह कीजिए कि वे आपको उन तजुरबों को सुनाएं जो उनको भारत के पुराने वाइसरायों से मिलने पर हुये थे। लखनऊ में उन्होंने मुझे एक दिन अपने उन अनुभवों को

हुई बात कानून के बराबर है। वह अपने पद की सीमाओं को जानते थे परन्तु जितना अधिकार संविधान ने दिया था उसका वह पूरा इस्तेमाल करते थे।

श्री गिरि अनुशासनहीनता के कट्टर विरोधी हैं। एक बार प्रयाग विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों ने बड़ा हंगामा मचाया जिससे संस्था की मान मर्यादा को बड़ा धक्का पहुंचा। प्रयाग उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री मथम और मैं ने गिरि साहब को इलाहाबाद युनिवर्सिटी की कार्यकारिणी की सदस्यता से त्यागपत्र भेज दिया। गिरि साहब ने हम लोगों को सब्र से काम लेने को कहा और मुझे उन्होंने एक पत्र में लिखा, "मैं तुम्हारी और प्रोफेसर देव की बात समझता हूं। तुम दोस्तों के साथ वफादारी निभाते हो। तुम्हारे कार्यकारिणी में रहने से उसमें मजबूती आती है। कुछ दिनों तक हमें चुपचाप रहना चाहिये। लोगों को हमारे बारे में हमारे कामों से नतीजा निकालना चाहिये।" उन्होंने सरकार से कड़ी कार्यवाही करने को कहा और ऐसा ही हुआ। एक दम विद्यार्थी आन्दोलन जोरों के साथ दबा दिया गया।

श्री गिरि ६५ साल की उम्र तक टेनिस खेलते थे। उनका परिवार बड़ा है और वह हर एक की खूब अच्छी तरह देखभाल करते हैं। गिरि साहब का हलका शरीर नहीं है परन्तु वह तेज चलते हैं और जोरों से काम करते हैं। जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे तो सुबह तड़के उठकर काम में जुट जाते थे और नौ बजे सुबह तक सारा जरूरी काम निपटा देते थे। १० बजे सुबह वह नैनीताल बोट क्लब में जाकर बैठ जाते थे और हर एक आदमी उनसे
दर्जनों आदमी उनसे उस समय मिलने आते थे और
और तरजों तरीके की तारीफ करते थे।
"क्या तुम्हें मालूम है कि यह ...
ही जवाब देते हुये उन्होंने

"ना" नहीं करते और किसी का दिल नहीं दुखाते। जहां तक बन पड़ता है लोगों की सहायता करते हैं।

गिरि जी उस परिवार में पैदा हुये हैं जिसमें सब लोग दूसरों की खातिर करने में माहिर रहे हैं। गिरि साहब लोगों को खिलाने पिलाने में बड़ा आनन्द लेते हैं। जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे तो शायद ही कोई उनसे मिलने वाला बिना कुछ खाए पिए राज भवन से वापस आया हो। एक दिन मैं लखनऊ में उनसे मिलने गया। फौरन ही उन्होंने खाने की सामग्री मंगवाई और जब मैं ने कहा कि मैं कुछ नहीं खाना चाहता तो वे बोले, "यहा आने पर हर आदमी को कुछ न कुछ खाने की सजा मिलती है। तुम बिना चाय पिए नही जा सकते। मैं तुम्हारे साथ बैठकर अब चौथी बार चाय पीऊंगा।" उनके सारे घर वाले मेहमाननवाजी के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

श्री गिरि यू० पी० के सबसे ज्यादा लोकप्रिय राज्यपाल थे। वह राज्य सभा के सभापति भी रह चुके हैं। सदस्यों का यह भाग्य था कि उनका सभापति इतना योग्य और समझदार व्यक्ति था। गिरि साहब को लोग इसलिये बहुत पसन्द करते हैं कि वह सबकी बात ध्यान और धीरज के साथ सुनते हैं और उनका दुःख बटाने की सदैव चेष्टा करते हैं।

गिरि साहब और उनके पिता जोगिया पानतुलू एक दूसरे को बड़ा प्रेम और आदर करते थे और एक दूसरे पर कुरबान रहते थे। वे दोनों मित्र और साथी का जीवन व्यतीत करते थे। जिन लोगों ने उन दोनों को देखा है उनका कहना है कि यह बताना कठिन था कि पिता पुत्र को ज्यादा प्यार करते थे या पुत्र, पिता को!

अगर आप गिरि साहब से निहायत दिलचस्प बातें सुनना चाहते हैं तो आप उनसे इस बात का आग्रह कीजिए कि वे आपको उन तजुरबों को सुनाएं जो उनको भारत के पुराने वाइसरायों से मिलने पर हुये थे। लखनऊ में उन्होंने मुझे एक दिन अपने उन अनुभवों को

हुई बात कानून के बराबर है । वह अपने पद की सीमाओं को जानते थे परन्तु जितना अधिकार संविधान ने दिया था उसका वह पूरा इस्तेमाल करते थे ।

श्री गिरि अनुशासनहीनता के कट्टर विरोधी हैं । एक बार प्रयाग विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों ने बड़ा हंगामा मचाया जिसमें संस्था की मान मर्यादा को बड़ा धक्का पहुंचा । प्रयाग उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री मथम और मैं ने गिरि साहब को इलाहाबाद युनिवर्सिटी की कार्यकारिणी की सदस्यता से त्यागपत्र भेज दिया । गिरि साहब ने हम लोगों को सब्र से काम लेने को कहा और मुझे उन्होंने एक पत्र में लिखा, "मैं तुम्हारी और प्रोफेसर देव की बात समझता हूं । तुम दोस्तों के साथ वफादारी निभाते हो । तुम्हारे कार्यकारिणी में रहने से उसमें मजबूती आती है । कुछ दिनों तक हमें चुपचाप रहना चाहिये । लोगों को हमारे बारे में हमारे कामों से नतीजा निकालना चाहिये ।" उन्होंने सरकार से कड़ी कार्यवाही करने को कहा और ऐसा ही हुआ । एक दम विद्यार्थी आन्दोलन जोरों के साथ दबा दिया गया ।

श्री गिरि ६५ साल की उम्र तक टेनिस खेलते थे । उनका परिवार बड़ा है और वह हर एक को खूब अच्छी तरह देखभाल करते हैं । गिरि साहब का हलका शरीर नहीं है परन्तु वह तेज चलते हैं और जोरों से काम करते हैं । जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे तो सुबह तड़के उठकर काम में जुट जाते थे और नौ बजे सुबह तक सारा जरूरी काम निपटा देते थे । १० बजे सुबह वह नैनीताल बोट क्लब में जाकर बैठ जाते थे और हर एक आदमी उनसे मिल सकता था । दर्जनों आदमी उनसे उस समय मिलने आते थे और उनकी मेहरबानी और तरजो तरीके की तारीफ करते थे । एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा, "क्या तुम्हें मालूम है कि यह लोग हमारे पास क्यों आते हैं ?" खुद ही जवाब देते हुये उन्होंने बताया कि वह जहां तक होता है किसी को

"ना" नहीं करते और किसी का दिल नही दुखाते । जहां तक बन पड़ता है लोगों की सहायता करते हैं ।

गिरि जी उस परिवार में पैदा हुये हैं जिसमें सब लोग दूसरों की खातिर करने में माहिर रहे हैं । गिरि साहब लोगो को खिलाने पिलाने में बड़ा आनन्द लेते हैं । जब वह उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे तो शायद ही कोई उनसे मिलने वाला बिना कुछ खाए पिए राज भवन से वापस आया हो । एक दिन मैं लखनऊ में उनसे मिलने गया । फौरन ही उन्होने खाने की सामग्री मंगवाई और जब मैं ने कहा कि मैं कुछ नहीं खाना चाहता तो वे बोले, "यहा आने पर हर आदमी को कुछ न कुछ खाने की सजा मिलती है । तुम बिना चाय पिए नही जा सकते । मैं तुम्हारे साथ बैठकर अब चौथी बार चाय पीऊंगा ।" उनके सारे घर वाले मेहमाननवाजी के लिए प्रसिद्ध रहे हैं ।

श्री गिरि यू० पी० के सबसे ज्यादा लोकप्रिय राज्यपाल थे । वह राज्य सभा के सभापति भी रह चुके हैं । सदस्यों का यह भाग्य था कि उनका सभापति इतना योग्य और समझदार व्यक्ति था । गिरि साहब को लोग इसलिये बहुत पसन्द करते हैं कि वह सबकी बात ध्यान और धीरज के साथ सुनते हैं और उनका दुःख बटाने की सदैव चेष्टा करते हैं ।

गिरि साहब और उनके पिता जोगिया पानतुलू एक दूसरे को बड़ा प्रेम और आदर करते थे और एक दूसरे पर कुरबान रहते थे । वे दोनों मित्र और साथी का जीवन व्यतीत करते थे । जिन लोगों ने उन दोनों को देखा है उनका कहना है कि यह बताना कठिन था कि पिता पुत्र को ज्यादा प्यार करते थे या पुत्र, पिता को !

अगर आप गिरि साहब से निहायत दिलचस्प बातें सुनना चाहते हैं तो आप उनसे इस बात का आग्रह कीजिए कि वे आपको उन तजुरबों को सुनाएं जो उनको भारत के पुराने वाइसरायों से मिलने पर हुये थे । लखनऊ में उन्होंने मुझे एक दिन अपने उन अनुभवों को

और मंत्री रहे हैं। देश में कुछ ही ऐसे आदमी हुये हैं जिन्होंने श्री गिरि से ज्यादा पद पाये हों और उन्हें इतनी शान से निभाया हो। १९७० में जब वह सुप्रीम कोर्ट में ,अपने राष्ट्रपति चुने जाने के खिलाफ एक चुनाव याचिका के सिलसिले में गवाही देने गये थे तो उनकी काफी धाक जमी। उन्होंने वहा भी अपनी योग्यता की छाप लगाई।

लोग दूसरों के ऊपर तो हंसते हैं लेकिन अपने ऊपर हंसना आसान नहीं। गिरि जी में अपने ऊपर हंसने की योग्यता है। एक बार उनसे कहा गया कि वह एक परिवार नियोजन के जलसे का उद्घाटन कर दें तो उन्होंने हंसकर कहा, "मैं ने सोलह बच्चे पैदा किये हैं। मैं परिवार नियोजन की बातचीत लोगों के सामने कैसे करू ?"

गिरि जी ने जब राष्ट्रपति के पद के लिये चुनाव लड़ा तो उन्होंने बड़ी हिम्मत से काम लिया। वह सारे देश के चारों भागों में फिरे और उन्होंने लोगों को यह बताया कि वह इस चुनाव के धन्धे में क्यो पड़े। वह राष्ट्रपति भवन छोड़ चुके थे और एक साधारण व्यक्ति की हैसियत से चुनाव लड़ रहे थे। जब वह लखनऊ आये तो उन्हें कई प्रकार की असुविधायें भी हुईं लेकिन उन्होंने बुरा न माना। लखनऊ में वह राज्यपाल रह चुके थे और उनके बहुत से दोस्त उनसे मिलने गये। उन सबसे वह लखनऊ गेस्ट हाउस में बड़े प्रेम से मिले और उन्होंने कहा, "अब मैं एक साधारण व्यक्ति हूं, और मुझे इस बात का फख है। मैं आप लोगों के परिवार का आदमी हूं। मुझसे आप उसी तरह से बर्ताव कीजिये और अपनाइये।" मैं ने उनसे पूछा कि अब उनको पत्र कहां भेजे जायें और उनके डाक का क्या पता है तो उन्होंने मुझसे मेरी डायरी मागी और खुद अपने हाथ से लिखा, "सी० २४३, डिफेन्स कालोनी, दिल्ली।"

७ नवम्बर १९६९ को मैं ने उन्हें गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद में देखा था जहां वे राष्ट्रपति की हैसियत से आये थे। उनसे कुछ ही सप्ताह पहले मैंने उन्हें साधारण व्यक्ति के रूप में देखा

था जब वे सबसे बड़े बेतकल्लुफी से मिले थे। मगर उस दिन जलसे में उनकी शान दूसरी थी। वह शान शौकत की मूर्ति मालूम होते थे और उनके चेहरे से शाहीपन टपकता था। उन्होंने एक बड़ा जोरदार भाषण दिया जिससे लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्री गिरि से मिलकर आप यह महसूस करते हैं कि आप एक ऐसे महानुभाव से मिले जो आपके दुख को समझता है और आपको ईमानदारी से मदद करना चाहता है। उनमें गरूर तो छू तक नहीं गया है। वह गरीबों और मजदूरों की समस्याओं को खूब अच्छी तरह से समझते हैं। देश में ऐसे बहुत कम नेता हैं जो श्री गिरि के समान लोकप्रिय हैं।

जाकिर हुसेन

भारत के राष्ट्रपति डाक्टर जाकिर हुसेन एक बड़ी शानदार
ती थे । उनके मुखालिफ भी उनकी शराफत और योग्यता का लोहा
नते थे । उनके एक रिश्तेदार ने यह भविष्यवाणी की थी कि वह
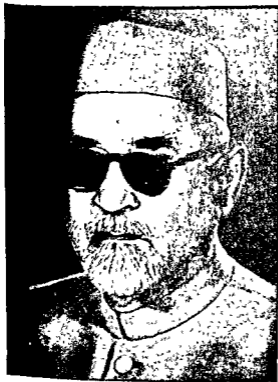
'बादशाह' होंगे । बात तो सही ही निकली गोकि जाकिर हुसेन
साहब सेवा को बादशाहत से ज्यादा अच्छा समझते थे ।

उन्होंने कुछ दिनों तक तालीम जर्मनी में भी पाई थी। वह

चिकित्सा के डाक्टर होना चाहते थे परन्तु डाक्टरेट अर्थशास्त्र में ली
जब गांधी जी ने स्कूल छोड़ो का नारा लगाया था तो ज़ाकिर साहब
कुछ दिनों क लिए स्कूल छोड़ दिया था। सन् १९४७ के बाद व
अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए थे। उस सम
अलीगढ़ साम्प्रदायिकता का बड़ा भारी अड्डा था। विश्वविद्याल
की फिजा बहुत खराब थी परन्तु ज़ाकिर साहब ने वहां के मामला
को बड़ी सहूलियत से सुलझाया और लोगों की विचारधारा में परि
वर्तन किया। यह परिवर्तन बिना किसी खास झगड़े या उपद्रव वं
हो गया और इसका श्रेय ज़ाकिर साहब को है।

वह बापू की बातें समझते थे और मानते थे। उन्होंने जामिया
मिलिया इस्लामिया की स्थापना की जो राष्ट्रीय विचारधाराओं का
केन्द्र बन गया। मुस्लिम लीग के लोग उस जमाने में उनके विचारों
का मज़ाक उड़ाते थे। जब लीगी लोग भारत के बंटवारे की मांग
करते थे तब ज़ाकिर साहब भारत की एकता के हामी थे। उनके
ऊपर मौलाना आज़ाद की तक़रीरों और विचारों का बड़ा जबर-
दस्त प्रभाव पड़ा। उन्होंने लिखा है, "जीवन को सार्थक बनाने के
लिए हर आदमी को कहीं न कहीं से प्रेरणा लेनी होती है। जब मैं
बालक था तब मैं अपने जीवन दीपक को जलाना चाहता था। पहली
बार उसे मैंने मौलाना आज़ाद के बड़े दीपक की लौ से जलाया था।"

डा० ज़ाकिर हुसैन एक बड़े विद्वान् थे। जब वह मलाया, थाईलैंड
और कम्बोडिया गए थे वहां उनका बड़ा आदर हुआ। उन्होंने अपनी
योग्यता और नम्रता के कारण वहां पर बड़ी धाक जमाई और भारतीय
संस्कृति की छाप लगाई। इन देशों के लोग जल्दी किसी से प्रभावित
नहीं होते परन्तु ज़ाकिर साहब की वहां खूब धाक जम गयी। वह
कला के बड़े प्रेमी थे और उनके घर में बहुत सी निराली चीजें थीं।
उन्हें बागों से बड़ा शौक था।

डाक्टर ज़ाकिर हुसैन ने राष्ट्रपति के चुनाव के दौरान में बड़े

सब्र और शान से काम लिया था। उन्होंने चुनाव की काय कांय में कोई हिस्सा नहीं लिया। कुछ लोगों ने उनके ऊपर झूठे, गन्दे आरोप भी लगाये परन्तु उन्होंने अपना मुह न खोला। उनकी जीत ने सरकार की इज्जत बढ़ाई और कांग्रेस भी मजबूत हुई। उनकी जीत कांग्रेस की जीत थी। दूसरे करीब करीब सभी राजनैतिक दलों ने उनका विरोध किया था। उन्होंने उपराष्ट्रपति के काम को बड़ी योग्यता से निभाया। राज्य सभा के सभापति के नाते उन्होंने सदन की सदारत बड़ी समझ और सुन्दरता से की थी। सभी पक्ष के लोग उनसे खुश थे और उनकी ईमानदारी और निष्पक्षता की तारीफ करते थे। सदन में उन्होंने हर सदस्य के अधिकारों की रक्षा की और कभी भी गुस्सा या बेसबरी न दिखाई। गम्भीर परिस्थितियों में उन्होंने बड़ी समझ और धीरज से काम लिया।

वह हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के सभापति १६३८ से १६५० तक रहे और वहां उनके काम की बड़ी प्रशंसा हुई थी। वह बहुत सी बड़ी बड़ी संस्थाओं के सभापति रहे। वह अपने आप को केवल शिक्षक ही कहते थे परन्तु वह कोई मामूली मास्टर नहीं थे। उन्होंने देश को शिक्षा दी है। वह पत्रकारों की समस्याओं को खूब समझते थे और प्रेस कमीशन के सदस्य भी थे। बापू, जाकिर हुसैन का बड़ा सम्मान करते थे और उन्हें सच्चा और योग्य देश सेवक समझते थे। तालीम के बारे में वह उनसे अक्सर सलाह मशवरा करते थे। गांधी जी ने १६३७ में बेसिक शिक्षा की योजना देश के सामने रक्खी थी और नेशनल बेसिक एजूकेशन कमेटी का जाकिर साहब को सभापति बनाया था।

जाकिर साहब ने अपना जीवन सादगी से बिताया था जिसमें उनकी पत्नी शाहजहान बेगम ने उनका इस काम में बड़ा साथ दिया था। चुनाव के बाद उनकी स्त्री से पूछा गया था कि उनके साविंद के राष्ट्रपति होने पर उनको कैसा लगा। उन्होंने जवाब दिया, "मैं

उनके साथ राष्ट्रपति भवन में रहने से उतनी ही खुश हूं जितनी
उनके साथ एक छोटे से मकान में रहने से थी।" जब वह मास्टर
तब ७५ रूपया माहवार कमाते थे। शाहजहान बेगम दस साल
थीं तब उनकी शादी हुई। जाकिर साहब की उमर उस समय
साल की थी। उनकी बीबी परदा करती हैं और जाकिर साहब
साथ कभी किसी मीटिंग वगैरा में नहीं जाती थीं। वह अपने पति
सेवा में ही लगी रहती थीं और इस बात का बड़ा ख्याल रखती थीं
उनके पति समय से खायें और समय से आराम करें।

जाकिर साहब अपने देश प्रेम में किसी से कम नहीं थे और उनक
शराफत का लोहा सब लोग मानते थे। जब वह राष्ट्रपति हुए त
उन्होंने कहा था, "सारा भारत मेरा घर है। सब लोग मेरे परिवा
के हैं। उन लोगों ने कुछ समय के लिये मुझे खानदान का मुखिय
चुना है। मेरी सदैव यह कोशिश रहेगी की मैं इस घर को सुन्द
और मजबूत बनाऊं और लोगों को आराम पहुंचाने की कोशिश करूंगा
खुदा मेरी मदद करे।" वह अपने विचारों पर सदैव अटल रहे थे और
इसके कारण उन्हें यातनाएं भी भोगनी पड़ी थीं। उनका विश्वास
था कि लोगों को त्याग का जीवन बिताना चाहिए और दूसरों की मदद
करनी चाहिए। उनके लिये स्वार्थ की जिन्दगी कोई शानदार
जिन्दगी नहीं थी।

डाक्टर राधाकृष्णन

स्टालिन अपने जमाने में दूसरे देशों के राजदूतों से मिलना ज्यादा पसन्द नहीं करते थे, मगर भारत के राजदूत राधाकृष्णन की ऐसी धाक रूस में बंधी थी कि एक बार स्टालिन ने कहा, "मैं उस प्रोफेसर से भेंट

करना चाहता हूं, जो चौबीसों घण्टे पढ़ता ही रहता है।" यह तो सबको मालूम था कि राधाकृष्णन न तो कम्युनिस्ट हैं न रूस की राजनीति से पूरी तरह सहमत हैं, मगर उनकी योग्यता की शोहरत सारे

उनके साथ राष्ट्रपति भवन में रहने से उतनी ही खुश हूं जितनी मैं उनके साथ एक छोटे से मकान में रहने से थी।" जब वह मास्टर थे तब ७५ रूपया माहवार कमाते थे। शाहजहान बेगम दस साल की थी तब उनकी शादी हुई। जाकिर साहब की उमर उस समय १५ साल की थी। उनकी बीबी परदा करती हैं और जाकिर साहब के साथ कभी किसी मीटिंग वगैरा में नहीं जाती थीं। वह अपने पति की सेवा में ही लगी रहती थीं और इस बात का बड़ा ख्याल रखती थीं कि उनके पति समय से खायें और समय से आराम करें।

जाकिर साहब अपने देश प्रेम में किसी से कम नहीं थे और उनकी शराफत का लोहा सब लोग मानते थे। जब वह राष्ट्रपति हुए तो उन्होंने कहा था, "सारा भारत मेरा घर है। सब लोग मेरे परिवार के हैं। उन लोगों ने कुछ समय के लिये मुझे खानदान का मुखिया चुना है। मेरी सदैव यह कोशिश रहेगी की मैं इस घर को सुन्दर और मजबूत बनाऊं और लोगों को आराम पहुंचाने की कोशिश करूंगा। खुदा मेरी मदद करे।" वह अपने विचारों पर सदैव अटल रहे थे और इसके कारण उन्हें यातनाएं भी भोगनी पड़ी थीं। उनका विश्वास था कि लोगों को त्याग का जीवन बिताना चाहिए और दूसरों की मदद करनी चाहिए। उनके लिये स्वार्थ की जिन्दगी कोई शानदार जिन्दगी नहीं थी।

डाक्टर राधाकृष्णन

स्टालिन अपने जमाने में दूसरे देशों के राजदूतों से मिलना ज्यादा पसन्द नहीं करते थे, मगर भारत के राजदूत राधाकृष्णन की ऐसी धाक रूस में बधी थी कि एक बार स्टालिन ने कहा, "मैं उस प्रोफेसर से भेंट

करना चाहता हूं, जो चौबीसों घण्टे पढ़ता ही रहता है।" यह तो सबको मालूम था कि राधाकृष्णन न तो कम्युनिस्ट हैं न रूस की राजनीति से पूरी तरह सहमत हैं, मगर उनकी योग्यता की शोहरत सारे

रूस में हो गई थी और इस महान् दार्शनिक की हवा बंध गई थी। सारे लोग इनका आदर करते थे, और वह भारत के बड़े सफल राजदूत माने जाते थे।

राधाकृष्णन को अपने बचपन में कभी ख्याल भी न हुआ होगा कि अंग्रेजों के जमाने में उनका इतना आदर होगा कि उनको 'सर' की पदवी दी जायेगी और आजाद हिन्दुस्तान के एक दिन वह राष्ट्रपति होंगे। उनकी जिन्दगी भी यह साबित करती है कि इस देश में यदि मनुष्य वाकई बड़ा होशियार है तो देर सवेर वह बड़े से बड़े पद पर बैठ सकता है। राधाकृष्णन की कामयाबी का कारण यह है कि वह एक बड़े अच्छे और शानदार वक्ता हैं। उनके ऐसे बोलने वाले दुनिया में बहुत कम नजर आते हैं। उन्होंने जीवन में बड़ा परिश्रम किया है। उनमें लगन से काम करने की शक्ति है। उनका दुनिया के दार्शनिकों में बहुत बड़ा मान है। उन्होंने भारत की सभ्यता का सन्देश सारी दुनिया में फैलाया और पश्चिम् के देशों को भारत की संस्कृति से भली भांति परिचित कराया है।

जवाहरलाल नेहरू राधाकृष्णन की योग्यता से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने सोचा कि ऐसे शानदार इन्सान को, जो इतना पढ़ा लिखा है, इतना अच्छा बोलता है और इतना समझदार है, किसी ऊंचे पद पर क्यों न बैठाया जाये और इसका सबूत दिया जाये कि बड़े बड़े ओहदे सिर्फ राजनीतिज्ञों के लिए ही नहीं हैं बल्कि विद्वान् लोग भी उन्हें पा सकते हैं। नेहरू ने उन्हें भारत का उपराष्ट्रपति बनाया जिसके कारण वह राज्य सभा के सभापति भी हो गये। राज्यसभा में उन्होंने बड़ी योग्यता और समझ से काम किया। सारे दलों के नेता उनका लोहा मानते थे। सारे सदस्य उनका सम्मान करते थे और उनकी बात आदर से सुनते थे। उनकी बड़ी धाक जम गई थी और समय आने पर उन्हें भारत का राष्ट्रपति भी चुन लिया गया। उन्होंने इस पद के [illegible] जिम्मेदारियों को बड़ी शान से निभाया।

जब उन्हें इस पद से अवकाश मिला, तो वह दिल्ली से अपने घर वापस चले गये और आजकल पढ़ाई लिखाई में लगे रहते हैं।

जब आप राधाकृष्णन को देखें तो आपको यह एहसास होता है कि यह इन्सान तो दुनिया में नाम कमाने के लिए ही पैदा हुआ है। इनको देखते ही आपके सामने बड़प्पन और योग्यता की तसवीर आ जाती है। उनसे मिलने और बातचीत करने में लोगों को बड़ा मजा आता है। यदि आप उनके साथ बैठकबाजी करें या उनके साथ घूमने जायें तो वह आप से दिल खोलकर बातचीत करते हैं। तब आपको अन्दाजा होता है कि वह दुनिया की कितनी बातों में कितनी दिलचस्पी रखते हैं और कितनी गहराई से कितनी जोरदार बातें करते हैं। वह जब पढ़ने लिखने के काम में लगे रहते हैं या विद्वान लोगों से बातचीत करते हैं तब वह सच्चे सुख का अनुभव करते हैं। वह धर्म, दर्शन और राजनीति का ऐसा सरल और सुन्दर विश्लेषण करते हैं कि लोगों को मजा आ जाता है और उनके पाण्डित्य का अन्दाजा होता है। ज्यादातर तो यह देखा गया है कि यदि आप दार्शनिकों की पुस्तकें पढ़ें तो आप बड़े प्रभावित होते हैं परन्तु जब आप उनसे बातचीत करने बैठें या उनके भाषण सुनें तो आपको कुछ निराशा होती है और अकसर आप बोर भी हो जाते हैं, मगर यह बात राधाकृष्णन के साथ नहीं है। चाहे आप उनकी किताबें पढ़ें, चाहे आप उनके भाषण सुनें, चाहे उनसे आप कमरे में बैठ कर बातचीत करें आपके ऊपर उनकी गहरी काबिलियत की छाप जरूर लगती है और आपको यह अन्दाजा हो जाता है कि वह दार्शनिक होते हुए भी जरूरत से ज्यादा काल्पनिक और अव्यावहारिक नहीं हैं। वह सिर्फ ख्यालों की दुनिया में ही नहीं मंडराते रहते बल्कि उन्हें दुनिया की हकीकत का भी पूरा अन्दाजा है।

राधाकृष्णन की कुछ कही हुई बातें कहावतें हो गई और अकसर दोहराई जाती हैं। उन्होंने पश्चिमी सभ्यता पर टीका करते हुए कहा था, "हमें हवा में चिड़ियों की तरह उड़ना सिखाया जाता है,

को हम बुरा-भला नहीं कह सकते क्योंकि हर एक मनुष्य या स्त्री में थोड़ी बहुत अच्छाई-बुराई, ऊंच-नीच, सच-झूठ विद्यमान रहता है।"

राधाकृष्णन ने यह साबित कर दिया कि एक दार्शनिक, एक जोरदार राजनीतिज्ञ भी हो सकता है। उन्हें लोग सिर्फ दर्शन के पण्डित के रूप में ही जानते हैं, बहुत कम लोगों को यह मालूम है कि वह उपन्यास, कविताएं और नाटक भी खूब पढते हैं। यदि आप में और उनमें कोई मत भिन्नता हो जाय तो वह नाराज नहीं होंगे। वह आप के दृष्टिकोण को जानने का प्रयत्न करेंगे। वह आपके विचारों को समझते तो हैं ही साथ ही अपने विचारों के बराबर ही आपके विचारों की भी व्याख्या करेंगे। सी० ई० एम० जोड ने एक बार लिखा था, "राधाकृष्णन जिन दृष्टिकोणों से सहमत नहीं होते उसकी भी व्याख्या बड़े जोरों से करते हैं।"

हमें इस बात पर गर्व है कि राधाकृष्णन जैसे व्यक्ति हमारे राष्ट्रपति रहे हैं। अपने काम को उन्होंने निहायत शान से निभाया। वह एक प्रकार के मुनि हैं। उन्हें मनन और अध्ययन करने में बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। वह धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति हैं। उनके अस्सी साल पूरे हो चुके हैं परन्तु उनकी बुद्धि उतनी ही तीव्र है जितनी पहिले कभी थी। उन्होंने अपनी जिन्दगी में बड़े बड़े काम किए और सदैव शान का जीवन व्यतीत किया है। भगवान् उन्हें स्वस्थ रखे और वे अपने देश की सेवा करते रहें और कठिन परिस्थितियों में हमारी रहनुमाई करें।

पुरुषोत्तम दास टण्डन

सिद्धान्तों पर डटने वाले इस बात की परवाह नहीं करते कि जीवन में उन्हें सफलता मिलेगी या नहीं। वह उसूलों पर जमें रहने को ही सफलता मानते हैं। ऐसे लोगों को चाहे बड़े बड़े पद मिलें या न मिले, चाहें उनके साथ के काम करने वाले उनसे सहमत हों या न हों, परन्तु उन्हें भुलाना आसान नहीं होता।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन हमारे ऐसे नेता थे जिन्होंने बचपन से मरते समय तक किसी को भी अपना सिर नही भुकाया, सिद्धान्तों पर कभी सौदा नहीं किया। जिस बात को सच समझा उस पर डटे रहे चाहे सारी दुनिया उनकी मुखालफत करे। ओहदों का लालच उन्हें छू न सका था, और बड़े से बड़े नेता भी उनसे तू तड़ाक न कर पाते थे। सब लोग उनका सम्मान करते थे गोकि बहुत से मामलात पर उनसे हमराय नहीं होते थे।

एक दिन टण्डन जी जवाहरलाल जी के साथ एक मीटिंग में जाने को थे। तय यह हुआ कि जवाहरलाल जी उनको उनके घर से ले लेंगे। समय निश्चित हुआ और जवाहरलाल जी ने उनसे कहा, "टण्डन जी तैयार रहिएगा, मैं ठीक दस बजे आपके घर पहुंच जाऊंगा।" जवाहरलाल जी के साथ रणजीत पण्डित और मैं टण्डन जी के घर पहुंचे। ... जी बड़े इतमीनान के साथ घर के बाहर आये और कहा, "अच्छा ... तुम आ गये ? मैं अभी चलता हूं !" टण्डन जी ने ... न किया था। यह देखकर जवाहरलाल जी दंग रह गये।

वह आध घंटे में तैयार होकर बाहर आये। जब तक वह नही आए जवाहरलाल जी गुस्से में इधर उधर हाथ फेंकते रहे और बार बार कहते थे कि टण्डन जी की यह अजीब आदत है कि वह समय से कभी तैयार नही रहते हैं। उस दिन मुझे डर लगा कि कहीं टण्डन जी के आने पर जवाहरलाल जी की उनसे झपट न हो जाए। जब वह तैयार होकर बाहर निकले तो उन्होंने पूछा, "जवाहरलाल, बहुत देर तो नहीं हुई ?" जवाहरलाल जी हंसकर बोले, "मेहरबानी करके अब तो तशरीफ रखिए और जल्दी से चलिए।" यदि टण्डन जी के बजाय और कोई होता तो जवाहर लाल जी डांट फटकार शुरू कर देते। परन्तु टण्डन जी के सामने वह कुछ न कह सके और रास्ते भर उन दोनो की बड़ी प्रेम पूर्वक बातचीत होती रही।

जीवन के आखिरी दिनों में टण्डन जी कांग्रेस से थोडा असन्तुष्ट हो गये थे और कई बार उन्होंने बड़े बड़े कांग्रेस वालों की कटु निन्दा की थी। एक दिन इलाहाबाद में एक बड़े जलसे में उन्होंने एक नेता की कटु आलोचना करते हुए कहा, "यह नेता है या मिरासी ? जो जवाहर लाल जी कहते हैं उनकी 'हां' में 'हां' मिलाते हैं। कांग्रेस में मिरासियों की तादाद बढ़ती जा रही है। यह देश के लिए हानिकारक है।" टण्डन जी बड़े निर्भय नेता थे और उनका गांधी जी से भी कई मामलों पर मतभेद रहता था।

जब टण्डन जी बालक थे तो उन्होंने एक दिन कुछ अंग्रेजों की ठुकाई कर दी क्योंकि उन्होंने कोई बदतमीजी की थी। ऐसी बात उस जमाने में शायद ही कोई हिन्दुस्तानी करने की हिम्मत करता था परन्तु टण्डन जी कभी किसी से नही डरते थे। एक बार म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में उन्होंने एक पुलिसवाले की मरम्मत की और एक बवाल उठ खड़ा हुआ। उनके प्रिन्सिपल ने उन्हें कॉलेज से निकाल दिया। उन्हें यह मंजूर था लेकिन वह अपमान सहन न कर सकते थे।

टण्डन जी प्रयाग विश्वविद्यालय की क्रिकेट टीम के कप्तान थे
वे खेलकूद में भी अभिरुचि रखते थे। वह अपनी युवावस्था में अखा
और कुश्ती में भी बड़ी दिलचस्पी लेते थे। उनकी शतरंज में भी ब
अभिरुचि थी। इस सम्बन्ध में यह कथा प्रसिद्ध है कि टण्डन ज
एक बार बी० ए० की परीक्षा में केवल इस लिए अनुत्तीर्ण हो ग
क्योंकि जिस दिन उन्हें परीक्षा देने जाना था उस दिन वह शतरं
खेलने में इतने खो गए कि परीक्षा के विषय में बिलकुल भूल गए
इस घटना के बाद इस प्रकार शतरंज में तन्मय रहना उन्हें अनिष्टकार
अनुभव हुआ और उन्होंने इस खेल को सदैव के लिए तिलांजलि दे दी

टण्डन जी भारतीय संस्कृति के बड़े हामी थे और हिन्दी भाषा
बढ़ाने में जो उन्होंने काम किया वह अमर रहेगा। इलाहाबाद का हिन्द
साहित्य सम्मेलन उन्ही की देन है। आखिरी दिनों में हिन्दी साहित्
सम्मेलन से सम्बन्धित लोगों के आपसी में झगड़ों ने उनका जी खट्
कर दिया था और वे इस कारण काफी दुखी रहते थे लेकिन उन्हें इस
बात का पूरा विश्वास हो गया था कि हिन्दी भाषा की प्रगति कोई रोक
न सकेगा। उनका हिन्दी से इतना प्रेम था और वे भारतीय तहजीब
के इतने बड़े समर्थक थे कि अक्सर कुछ लोगों को यह भ्रम हो जाता था
कि वह मुसलमानों के खिलाफ है। इससे ज्यादा कोई गलत धारणा
नहीं हो सकती। उनके लिए हिन्दू मुसलमान में कोई भेद न था।
मुझसे वह एक दिन बोले, "मुस्लिम लीग की कटु निन्दा करने के कारण
और हिन्दी का हिमायती होने की वजह से मुझे लोग मुसलमानों का
द्रोही समझते हैं। लोगों को नहीं मालूम है कि मेरे कितने सच्चे दोस्त
मुसलमान हैं और मैं किसी मुसलमान की रक्षा के लिए अपनी जान की
जी लगा सकता हूं।" लोगों को नहीं मालूम कि वह उर्दू भाषा की
...ी इज्जत करते थे और उर्दू के अशआर अक्सर सुनाते थे।

टण्डन जी प्रयाग विश्वविद्यालय के एक प्रतिभाशाली छात्र थे
...र उन्होंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकालत भी की थी।

कुछ समय तक वह नाभा राज्य के मंत्री और पंजाब नेशनल बैंक के सेक्रेटरी भी थे। वह एक कांग्रेसजन के रूप में सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट हुए थे, और प्रयाग नगर पालिका के अध्यक्ष (चेयरमैन) भी रहे थे। वह लोक सेवक मण्डल के अध्यक्ष थे और कई वर्षों तक उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष रह चुके थे। उन्होंने उत्तर प्रदेश विधान सभा में एक बार कहा था, "मैं बहुमत प्राप्त कर लेने मात्र से अध्यक्ष पद ग्रहण नहीं कर सकता, यदि अल्पमत के अधिकांश लोग भी मुझे अध्यक्ष पदासीन देखने के इच्छुक नहीं हैं तो मैं पदत्याग करना ही उचित समझूंगा।" किसी व्यक्ति को यह चुनौती स्वीकार करने का साहस न हुआ क्योंकि उनकी निष्पक्षता और ईमानदारी संदेह से परे थी। मैं विश्वास के साथ कह सकता हू कि अध्यक्ष के रूप में वह विठ्ठलभाई पटेल से भी आगे निकल गए, जिनकी लोग इतनी सराहना और सम्मान किया करते थे।

टण्डन जी बड़े उदार और संवेदनशील थे। यदि कोई उनके घर जाता था तो वह उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनते थे तथा उसकी सहायता करते थे। बहुत से लोग उनका समय अनावश्यक नष्ट करते थे। इससे उन्हें अपनी चिठ्ठी-पत्रियां तथा दूसरे कामों पर ध्यान देने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता था। लोग उनसे अपने बच्चों के विवाह, पारिवारिक बीमारियाँ, घरेलू समस्याएं और आर्थिक चिन्ताओं के विषय में बातें करते थे यह सब बातें वह सुनते थे तथा उन सबको योग्य सलाह देते थे।

टण्डन जी अपनी पुरानी किताबों को बेचना पसन्द नही करते थे। उन्होंने एक दिन मुझे बताया कि किताबों पर इधर उधर लिखे हुए नोट अक्सर पुराने जमाने की मधुर स्मृतियों की याद दिलाते हैं। जिन्हें याद कर मनुष्य का चित्त प्रसन्न होता है। इसी सिलसिले में यह बताना चाहता हूं कि टण्डन जी ने एक व्याकरण की किताब भी लिखी थी जब वह बी० ए० पास भी नही थे। यह किताब उनके

बी० ए० पास करने के बाद छपी और उस पर लिखा था—लेखक, पुरुषोत्तमदास टण्डन, बी० ए० !

वह हिम्मत में अपना जवाब नहीं रखते थे । जब वह इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के चयरमैन थे तो एक बार लाट साहब ने अपने तैरने के तालाब के लिए पानी मांगा । उस समय शहर में पानी की कमी थी । टण्डन जी ने पानी देने से साफ इन्कार कर दिया और शहर में तहलका मच गया । टण्डन जी ही उस समय ऐसा काम कर सकते थे । इलाहाबाद में फौजी अफसरों के ऊपर इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के साठ हजार रुपए बाकी थे । उस रुपए की वसूली के लिए उनको कई बार लिखा गया लेकिन उन्होंने रुपया नहीं भेजा । टण्डन जी को बहुत क्रोध आया और उन्होंने फौज के एक अफसर को एक खत लिखा और यह कहा कि यदि रुपया एक दम अदा नहीं किया गया तो फौज को पानी बिल्कुल नहीं दिया जाएगा । उनके पत्र का असर हुआ और सारा रुपया फौरन आ गया । ऐसी हिम्मत उस समय में कितने लोग दिखा सकते थे !

टण्डन जी उत्तर प्रदेश में कृषक आन्दोलन के जन्मदाता थे । सब से पहले १९१० में उन्होंने किसान संघ की स्थापना की थी । इसके कार्य केवल इलाहाबाद जिले तक ही सीमित थे । सन् १९२१ में उन्होंने प्रादेशिक आधार पर किसानों का संगठन किया था । सन् १९४२ में नैनी जेल में वह हमारे लिए शक्ति के प्रतीक थे । वहीं पर मैंने उनकी वास्तविक शक्ति का अनुभव किया था । टण्डन जी का जीवन देश भक्ति में एक कविता है जो आने वाली पीढ़ियों को सदैव [illegible] करेगी । उन्होंने राजनीति में बड़ी ख्याति पाई थी । [illegible] देश के एक महान् नेता थे । उन्होंने अपने देश की बड़ी [illegible] और सच्चाई के साथ सेवा की थी । उनकी याद उनके देश [illegible] जल्दी नहीं भूला सकते ।

विजय लक्ष्मी पंडित

वड़े घर में पैदा होने से ही कोई बड़ा नहीं हो जाता । जब तक किसी में सच्चा बड़प्पन और बुद्धिमत्ता नही है वह असलियत में बडा नहीं हो सकता । इसमें कोई शक नहीं कि विजय लक्ष्मी पंडित एक वड़े धनवान घर में पैदा हुई थी और एक बड़े नेता की बहन थी लेकिन यदि वह मंत्री, राजदूत और नेता के रूप में सफल हुई हैं तो उसका कारण यह है कि उनमें खुद की काबिलियत काफी है । उनकी प्रतिभा और सौन्दर्य भी उन्हे जीवन में इतना कामयाब नही कर सकता था यदि वे बड़ी निपुण और दक्ष न होती । मैंने तो उन्हें बहुत नजदीक से स्त्री, माता, बहन, नेता और मित्र के रूप में देखा है और उनकी सहिष्णुता और विनम्रता ने मुझे सदैव प्रभावित किया है ।

उनमें दोष भी हैं लेकिन जब मैं उनके गुणों की तरफ देखता हूं तो उनके छोटे छोटे अवगुणों का ध्यान तक नहीं आता ।

१९४३ की बात है जब लाखों कांग्रेसी जेल में बड़े कष्ट भोग रहे थे। कुछ दिन के कारागार के बाद सरकार ने विजय लक्ष्मी पंडित को रिहा कर दिया क्योंकि वे बीमार थीं । उनका शरीर तो आनन्द भवन में था लेकिन उनका दिल उन साथियों के साथ था जो जेल में बड़ी बड़ी यातनाएं झेल रहे थे । नैनी जेल में एक मित्र बहुत बीमार पड़ गए और जेल अधिकारियों ने उनकी बीमारी का कोई ज्यादा ख्याल न

किया। उस साथी की बीमारी से हम लोग बड़े चिन्तित थे
दिन मैं ने एक पत्र विजय लक्ष्मी को छिपाकर भेजा और उनसे अ
किया कि कृपा करके सिविल सर्जन को जेल में भेजें और बीमा
युवक एच० एन० बहुगुना की जान बचा लें। उनका खत फौरन अ
उसमें उन्होंने पूरी मदद करने का वादा किया और उस खत में
उस समय के बंगाल के अकाल का भी जिक्र किया। उन्होंने
"तुम्हारा खत मिला। यह सुनकर खुशी हुई कि तुम जेल में ठ
हो। मैं आशा करती हूं कि तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक होगा
बहुगुना के बारे में सिविल सर्जन को लिख रही हूं। यकीन रख
कुछ कर सकती हूं जरूर करूंगी··· । मैं अच्छी हो हूं लेकिन
के दौरे के बाद काफी परेशान और थकी हुई हूं। वहां की
खराब ही होती जा रही है। इंसान ने ही बंगाल पर यह
वर्षा किया है और सरकार इस अकाल को रोक सकती थी यदि
चाहती। जिस वाहियात तरीके से सरकार और दलालों इ
ने गरीब किसान की मुसीबत का फायदा उठाया है, किसी न
दिन तो लोगों को यह मालूम हो ही जाएगा। गांव के गांव सा
गए हैं और भूख के कारण इंसान इंसान नहीं रह गया है। यह
दर्दनाक और लम्बी कहानी है और उसकी यहां कहां तक चरचा क
···मुझे लिखो यदि तुम्हें किसी चीज की जरूरत हो। भाई के
बराबर मिलते हैं परन्तु वे अपने बारे में कुछ नहीं लिखते।
बंगाल के बारे में ज्यादा लिखने की इजाजत भी नहीं है। लेकि
तो जाहिर ही है कि वे बड़े दुखी हैं···सब मित्रों को नमस्क
बहुगुना के लिए पूरी कोशिश करूंगी। परेशान न हों।"

यह पत्र विजय लक्ष्मी की उदारता पर काफी रोशनी डालता
ऐसे ही गुणों ने उनकी जीवन में बड़ी सहायता की है।

मैंने विजय लक्ष्मी को खुशी में कहकहा लगाते और गम में
बहाते देखा है। मैं उनके सब्र, शक्ति और हिम्मत से बड़ा प्रभा

हुआ हूं। जब जवाहर लाल जी जेल में थे तब उनके पति का देहान्त लखनऊ में हो गया। वे, उनकी लड़की रीता और मै, रजीत पंडित के शव को इलाहाबाद मोटर से लाए थे। श्रीमती पंडित के गम का ठिकाना न था। एक दो बार उन्होंने आसू बहाए लेकिन फिर अपने आपको उन्होंने सम्भाला और अपनी बेटी रीता को सात्वना दी जो अपने पिता के गम में बेजार थी। थोड़े ही दिनों के बाद उन्होंने उस गम पर परदा डाला और बंगाल के अकाल पीडित लोगों की सहायता करने में अपने को लगा दिया। उन्होंने बगाल मे उस समय बड़ा प्रशंसनीय काम किया और उसमें वे अपने दुख को भूल गई।

बंगाल के दौरे में मैं भी एक बार उनके साथ गया। मैं ने देखा कि वहां पर उन्होंने बड़ी कुशलता से काम किया। काम करने वालों में एक नई जागृति पैदा की। अफसरों ने भी अपना रवैया थोड़ा बदला। वे मुसीबत से घबड़ाई नही और उन्होने दुखी लोगों की सहायता करने की प्रार्थना की और काफी लोगो ने उस काम में उनका हाथ बटाया। अपने भाई की तरह वे भी उन लोगो का, जो उनके साथ रहते है, बहुत ख्याल करती है।

एक दिन मैं शाम को कलकत्ते के बाजार में घूमने निकल गया। एक मिलिटरी ट्रक से मै टकराया और सड़क पर मुह भड़ाक गिर पड़ा। मरते मरते बचा। जब घर पहुंचा तो चेहरा पीला था और जी घबड़ा रहा था। उनकी लड़की रीता ने जब मुझको देखा तो वह चिल्लाती हुई अन्दर गई और कहा "मम्मी, देखो टंडन को क्या हो गया है!" विजय लक्ष्मी भागी हुई आई और शीघ्र ही डाक्टर को बुलाया गोकि कोई खास जरूरत न थी। दूसरे दिन उन्होंने मुझे डाट कर कहा, "मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूं कि जब बाहर जाओ तो मोटर ले जाया करो। कलकत्ता इलाहाबाद नही है। काफी आदमी यहा मर रहे है, तुम्हें इस तरह प्राण देने की जरूरत नही है।" वे इस घटना से काफी परेशान हो गई थी। मैं उनकी हमदर्दी से प्रभावित हुआ।

एक दिन मिसेज पंडित कुर्सी पर बैठी हुई किसी विचार में मग्न थीं। उसी समय उनके सामने एक साहब आ धमके। कुछ बातचीत प्रारम्भ हो गयी और उन्होंने कहा कि आपको संसदीय पार्टी के डिप्टी लीडर के चुनाव लड़ने के बारे में कुछ बड़े नेताओं का यह ख्याल है कि आपको जल्दी नहीं करनी चाहिए और इन्तजार करना चाहिए। यह बात सुनकर श्रीमती पंडित का चेहरा तमतमा उठा और उन्होंने कहा, "सब लोगों की तरह मैं भी एक दिन मरूंगी, मैं बूढ़ी हो चली हूं और जल्द ही ६५ साल की हो जाऊंगी। यह सही है कि अभी मुझमें काफी जोश और काम करने की शक्ति बाकी है और मैं जब तक जीवित रहूंगी जोरों के साथ काम करूंगी। लेकिन जरा मुझे यह बताइए कि जो लोग मुझसे इन्तजार करने को कहते हैं वे खुद इन्तजार क्यों नहीं करते?"

जिन साहब ने बातचीत शुरू की थी एकदम चुप हो गए और खामोशी छा गई परन्तु शीघ्र ही श्रीमती पंडित के एक मित्र ने, जो वहां उपस्थित थे, श्रीमती पंडित को हंसा दिया और सब लोग हंस पड़े। उन्होंने कहा, "आप कहती हैं कि आप बूढ़ी हो रही हैं इस बात को कौन मानेगा? आप हम लोगों को यह झांसा न दीजिए।"

जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के बाद विजय लक्ष्मी ने यह फैसला किया कि वह अपने भाई की सीट से संसद का चुनाव लड़ेंगी। राज्यपाल के पद को छोड़ने का निश्चय एक दम किया परन्तु कांग्रेस टिकट मिलने में कई कारणों से कुछ देरी हुई। चुनाव के एक माह पहले कांग्रेस ने उन्हें इस क्षेत्र से चुनाव लड़ने की अनुमति दी। विजय लक्ष्मी एक दम आनन्द भवन आई और वहां कुछ समय तक उन्होंने बड़ा अकेलापन महसूस किया। न कोई सलाह देने वाला, न कोई काम में हाथ बटाने वाला। उनके पास न कोई चपरासी था, न कोई सेक्रेटरी। घर में जहां जगह मिलती थी वहीं बैठकर खत लिखती थीं। आते ही आते उन्होंने कुछ कमरों की पुताई करवाई। तेजी

का आना शुरू हो गया। काम करने वालों ने हाथ बटाने का यकीन दिलाया। उन्होंने चुनाव का दफ्तर आनन्द भवन में खोला। काम करने वालों के लिए खाना, अचार, मिठाई, चाय इत्यादि मंगवाया और चुनाव का काम जोरों से शुरू हो गया। उन्होंने गाव गांव घूमना शुरू कर दिया। सुबह घर से निकल जाना, चलती हुई जीप में खाना खाना और शाम को धूल में लिप्त कर आनन्द भवन लौटना रोज का नियम हो गया। अन्त में उनकी विजय हुई और कांग्रेस की धाक जम गई।

अपने पति के देहान्त के बाद विजय लक्ष्मी गाधीजी से मिलने गई और उन्होंने अपने कुछ सम्बन्धियो के बारे में बड़ी कटु बातें कही। कुछ बातों से उनका चित बड़ा दुखी था। गाधी जी ने उन्हें धैर्य धारण करने के लिए कहा और यह बतलाया कि क्रोध करने से कोई फायदा नही होगा। उन्होंने विजय लक्ष्मी से कहा, "कोई तुम्हें नुकसान नही पहुंचा सकता केवल तुम्ही अपने को नुकसान पहुंचा सकती हो।" उस समय तो यह बातें विजय लक्ष्मी की समझ में न आई परन्तु बाद में उन्होंने उसकी अहमियत को महसूस किया और यह खुद कहा है कि "मेरे लिए जीवन में सबसे बड़ी सलाह यही थी जो बापू ने दी थी" और जीवन में इस सलाह ने उनका बड़ा साथ दिया है।

विजय लक्ष्मी अपने मेहमानों की बहुत खातिर करती हैं। खूब खिलाती-पिलाती हैं और दिलचस्प बातें सुनाती हैं। उन्हें खुद अच्छे खानों का बड़ा शौक है। १९४१ में जब उनके सम्बन्धी और मित्र उनसे जेल में मिलने जाते थे तो उनके लिए बाजार से कचौड़ी खरीद कर ले जाया करते थे। जब यह आनन्द भवन में रहती थी तब आनन्द भवन में जान आ जाती थी। लोग समझते है कि विजय लक्ष्मी केवल एक राजनीतिज्ञ ही हैं लेकिन उनकी बहुत चीजों में दिलचस्पी है। वह बहुत बढ़िया खाना बनाती है। घर में चाहे कितना ही थोड़ा सामान हो और कोई भी समय हो वह बहुत फुर्ती से बहुत स्वादिष्ट भोजन बना लेती है।

जब विजय लक्ष्मी इलाहाबाद आती हैं तो उनके दोस्त और पड़ोसी उन्हें घेरे रहते हैं। वह सबसे बड़ी नम्रता से बात करती हैं और लोग बड़े खुश रहते हैं। कभी कभी कुछ लोगों के नाम भूल जाती हैं परन्तु जब कभी कोई यह कहता है कि आप क्या मुझे भूल गई है। वह इत्मीनान से जवाब देती है, "नहीं भाई, अपने पुराने दोस्तों को कोई भूल सकता है ?" कुछ क्षणों के बाद उन्हें खट से नाम याद आ जाते हैं फिर वे मित्रों को नाम से सम्बोधित करने लगती हैं और तब लोगों को यह विश्वास हो जाता है कि विजय लक्ष्मी उन्हें भूली नहीं हैं।

विजय लक्ष्मी ने अनेक क्षेत्रों में ख्याति पाई है। इसका कारण यह है कि वह बड़ी होशियार हैं और इन्सान को एक दम समझ जाती हैं। हमारे युग की वह एक महान महिला है। वह दया और सौन्दर्य की मूर्ति हैं। वह बहुत सच्ची दोस्त हैं और दोस्तों की डट कर मदद करती हैं। मुसीबत के समय वह अपने दोस्तों का अच्छी तरह साथ देती है।

कामराज

कभी कभी मनुष्य एकाएक विख्यात हो जाता है और लोग सोचते रह जाते हैं कि यह कैसे हो गया। सन् १९४१ में गांधी जी ने आचार्य विनोबा भावे को पहला सत्याग्रही बनाने का तै किया और सारा जगत उन्हें जान गया। प० जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस के पुनर्जीवन के लिए कामराज की योजना मान ली और सारे हिन्दुस्तान में बड़े जोरों से कामराज की शोहरत हो गई। उन्होंने भारत की राजनीति में बराबर धाक जमाई। उन्होंने और श्री लाल बहादुर शास्त्री ने यह बात साबित कर दी कि यह जरूरी नहीं है कि भारत में ऊंचे से ऊंचे पद पाने के लिए मनुष्य को धनी होना चाहिए। कामराज तो कालेज या किसी विश्वविद्यालय में पढ़ने भी नहीं गए परन्तु उन्होंने

जीवन की पुस्तक को बड़े ध्यान से पढ़ा है और बड़े बड़े सबक सीखे। उन्होंने जवाहर लाल नेहरू के जीवन काल में ही अपनी योग्यता की छाप देश पर लगा दी थी, परन्तु पंडित जी की मौत के बाद तो उन्होंने कमाल ही कर दिया। बरसों तक सारी दुनिया में "नेहरू के बाद कौन" सवाल लोग पूछते रहे और कुछ लोगों का ख्याल था कि कांग्रेस पार्टी में इस मसले पर बड़े झगड़े होंगे और भगवान न जाने क्या होगा। कामराज ने इस जटिल समस्या को ऐसी सहूलियत से सुलझाया कि दुनिया देखती रह गई। उन्होंने लाल बहादुर जी को एक मत से प्रधान मंत्री चुनवाया और कांग्रेस में इस मामले पर फूट न पड़ने दी। कामराज

जब विजय लक्ष्मी इलाहाबाद आती है तो उनके दोस्त और उन्हें घेरे रहते हैं। वह सबसे बड़ी नम्रता से बात करती हैं औ बड़े खुश रहते हैं। कभी कभी कुछ लोगों के नाम भूल जाती हैं जब कभी कोई यह कहता है कि आप क्या मुझे भूल गई हैं इत्मीनान से जवाब देती है, "नहीं भाई, अपने पुराने दोस्तों क भूल सकता है ?" कुछ क्षणों के बाद उन्हें झट मे नाम याद आ ज फिर वे मित्रों को नाम से सम्बोधित करने लगती हैं और तब लो यह विश्वास हो जाता है कि विजय लक्ष्मी उन्हें भूली नहीं है।

विजय लक्ष्मी ने अनेक क्षेत्रों में ख्याति पाई है। इसका क यह है कि वह बड़ी होशियार है और इन्सान को एक दम समझ जात हमारे युग की वह एक महान महिला है। वह दया और सौन्दर्य की हैं। वह बहुत सच्ची दोस्त है और दोस्तों की डट कर मदद करतं मुसीबत के समय वह अपने दोस्तो का अच्छी तरह साथ देती है।

कामराज जनता से सदैव सम्पर्क बनाए रहते हैं। उन्हें इस बात का यकीन है कि असली ताकत जनता के हाथों में है। वह किसी बड़े मसले पर बिना जनता की राय लिए कोई फैसला नहीं करना चाहते। वह खुद गरीब रहे हैं और गरीबों की समस्याओं को खूब समझते हैं और जानते हैं कि निर्धन लोग कितनी मुसीबत से अपना जीवन बिताते हैं। वह कुनबापरस्ती में विश्वास नहीं करते। उन्होंने शादी नहीं की और उन्हें इस बात की फिकर नहीं है कि बेटे, दामादों को कैसे बड़ी बड़ी नौकरियां दिलाएं और उनका रुतबा बढाएं। सारा भारत उनका खानदान है और सब देशवासी उनके रिश्तेदार हैं। जनता की सेवा उनका मजहब है। वह बड़े नेता इस कारण हो गए कि उन्होंने बरसों तक देश की बड़ी सच्चाई और बहादुरी से सेवा की। उनमें एक खास बात यह है कि वह झूठे मूठे वादे नहीं करते, न लम्बी चौड़ी बातें हांकते हैं। उनमें बड़ी भारी संघटन शक्ति है और वह लोगों को अपने साथ में लेकर काम करने में विश्वास करते हैं। अगर उनकी राय किसी समय गलत साबित हो जाय तो वह अपनी गलती एक दम मान लेते हैं और दूसरों की बताई हुई सही बातों पर खुशी से अमल करते हैं। वह देश को समाजवाद की तरफ ले जाना चाहते हैं और पूंजीवाद के कट्टर विरोधी हैं। वह नेहरू के सच्चे अनुयायी हैं और अपने भाषणों में सदैव नेहरू और उनके सिद्धान्तों की चरचा करते हैं। एक बार नेहरू ने कहा था कि कामराज कांग्रेस में एक आन्दोलन है।

कामराज यह जानते हैं कि काम कैसे कराए जाते हैं और ताकत का इस्तेमाल कैसे किया जाता है। वह ६५ साल के हो चुके हैं लेकिन वह अब भी जोश व आशा से भरे हैं। उनका विश्वास है कि अच्छा काम करने के लिए अच्छे आदमियों की जरूरत होती है। उन्हें संगठन करने की बड़ी शक्ति है। कामराज ने जब मुख्य मंत्री के पद को छोड़ा तब उन्हें इस बात का अन्दाजा नहीं था कि उन्हें मुख्य मंत्री के पद से बड़े पद का भार सम्भालना पड़ेगा। यह सबने देख लिया कि चाहे

के इस काम से लोगों का उनमें विश्वास बढ़ा और उनकी योग्यता की सराहना की।

कामराज मिलजुल कर काम करना जानते हैं और लोगों को अच्छी तरह समझते हैं। वे बड़े सबर के आदमी हैं। बोलते कम हैं और सुनते ज्यादा हैं। हर मामले को अच्छी तरह समझ कर फैसला करते हैं। लोग सोचते हैं कि कामराज सिर्फ तामिल ही जानते हैं और ठीक तरह से अंग्रेजी भी नहीं समझते। कामराज लोगों की इस धारणा का खंडन करने की परवाह नहीं करते परन्तु सच तो यह है कि वह ठीक अंग्रेजी बोलते हैं और अच्छी तरह से समझते हैं। एक बार मैंने उनसे आनन्द भवन में काफी देर तक अंग्रेजी में बात की और वह हर बात का जवाब अंग्रेजी में देते रहे। जब वह मद्रास के मुख्य मंत्री हुए तो मुख्य सचिव राज्यपाल श्री श्री प्रकाश के पास हड़बड़ाए हुए गए और कहा कि उन्होंने सुना है कि मुख्य मंत्री अंग्रेजी बिल्कुल नहीं समझते और शायद ठीक तरह से अंग्रेजी में हस्ताक्षर भी नहीं कर पाते। मुख्य सचिव ने कुछ ही हफ्तों के अन्दर अपनी राय बदल दी और कामराज ने दिखा दिया कि शासन कैसे शान से चलाया जाता है।

कामराज किसी मीटिंग में तीस मिनट से ज्यादा शायद कभी नहीं बोलते और बड़े पते की बात कहते हैं जिसे जनता समझती है और सही मानती है। वह बहुत सी बातें थोड़े ही समय में कहने में माहिर हैं। वह देश के मामलात को बहुत अच्छी तरह समझते हैं। वह तामिलनाड कांग्रेस के १५ साल तक अध्यक्ष रहे। उन्होंने राजा जी ऐसे आदमियों से टक्कर ली और उनका मद्रास से पत्ता काट दिया। स्व० सत्यमूर्ति कामराज को बहुत मानते थे और उन्होंने ही कामराज को तामिलनाड कांग्रेस का मंत्री बनाया था जब वह तामिलनाड कांग्रेस के सभापति चुने गए थे। जब कामराज मद्रास के मुख्य मंत्री हुए तो एक दम वह सत्यमूर्ति की विधवा पत्नी के पास उनका आशीर्वाद लेने गए। वह बहुत वफादार आदमी हैं और उन्हें आदर्शों की बहुत परख है।

कामराज जनता से सदैव सम्पर्क बनाए रहते हैं। उन्हें इस बात का यकीन है कि असली ताकत जनता के हाथों में है। वह किसी बड़े मसले पर बिना जनता की राय लिए कोई फैसला नहीं करना चाहते। वह खुद गरीब रहे हैं और गरीबों की समस्याओं को खूब समझते हैं और जानते हैं कि निर्धन लोग कितनी मुसीबत से अपना जीवन बिताते हैं। वह कुनबापरस्ती में विश्वास नहीं करते। उन्होंने शादी नहीं की और उन्हें इस बात की फिकर नहीं है कि बेटे, दामादों को कैसे बड़ी बड़ी नौकरियां दिलाएं और उनका रुतबा बढाएं। सारा भारत उनका खानदान है और सब देशवासी उनके रिश्तेदार हैं। जनता की सेवा उनका मजहब है। वह बड़े नेता इस कारण हो गए कि उन्होंने बरसों तक देश की बड़ी सच्चाई और बहादुरी से सेवा की। उनमें एक खास बात यह है कि वह झूठे मूठे वादे नहीं करते, न लम्बी चौड़ी बातें हांकते हैं। उनमें बड़ी भारी संघटन शक्ति है और वह लोगों को अपने साथ में लेकर काम करने में विश्वास करते हैं। अगर उनकी राय किसी समय गलत साबित हो जाय तो वह अपनी गलती एक दम मान लेते हैं और दूसरों की बताई हुई सही बातों पर खुशी से अमल करते हैं। वह देश को समाजवाद की तरफ ले जाना चाहते हैं और पूंजीवाद के कट्टर विरोधी हैं। वह नेहरू के सच्चे अनुयायी हैं और अपने भाषणों में सदैव नेहरू और उनके सिद्धान्तों की चरचा करते हैं। एक बार नेहरू ने कहा था कि कामराज कांग्रेस में एक आन्दोलन है।

कामराज यह जानते हैं कि काम कैसे कराए जाते हैं और ताकत का इस्तेमाल कैसे किया जाता है। वह ६५ साल के हो चुके हैं लेकिन वह अब भी जोश व आशा से भरे हैं। उनका विश्वास है कि अच्छा काम करने के लिए अच्छे आदमियों की जरूरत होती है। उन्हें संगठन करने की बड़ी शक्ति है। कामराज ने जब मुख्य मंत्री के पद को छोड़ा तब उन्हें इस बात का अन्दाजा नहीं था कि उन्हें मुख्य मंत्री के पद से बड़े पद का भार सम्भालना पड़ेगा। यह सबने देख लिया कि चाहे

कोई कितना ही गरीब हो, कितना ही कम पढ़ा हो, वह भारत में बड़े से बड़े पद पर पहुंच सकता है यदि वह साहसी, योग्य और ईमानदार है। कामराज ने समाजवाद का अध्ययन नहीं किया है लेकिन वह समाजवाद की मोटी मोटी बातें सब अच्छी तरह से जानते हैं और उस पर अमल करते हैं। उन्होंने अपने भाषण में एक बार कहा, "हम रईसों के ऊपर ज्यादा से ज्यादा टैक्स लगाना चाहते हैं। हम उनके घर में पड़ी हुई दौलत जनता के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि दौलत वाले अपनी दौलत आसानी से नहीं देंगे। हमें उनकी दौलत लेने के लिए कानूनी कार्यवाही करनी पड़ेगी।"

राजा जी और कामराज पुराने राजनैतिक विरोधी हैं। राजा जी के कांग्रेस छोड़ने के बहुत कारण थे लेकिन एक बड़ा कारण यह भी था कि वह कामराज ऐसे अपढ़ नेता को अपने प्रान्त में बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। कामराज मनुष्य को जल्दी समझ लेते हैं और कठिन परिस्थितियों में बड़ी समझदारी के फैसले करते हैं। वह लोगों को रास्ता दिखाने के लिए तैयार रहते हैं और उन्हें दूसरों का नेतृत्व मानने में कोई कठिनाई नहीं होती। उनमें नेता और सिपाही दोनों के गुण हैं। वह बड़े परिश्रमी हैं और जिनका वह विश्वास करते हैं उनके ऊपर जिम्मेदारियां छोड़ने में हिचकिचाते नहीं। इससे इनका बोझ हल्का हो जाता है और दूसरे लोगों को काम सीखने का मौका मिलता है। गोकि वह खुद अपढ़ हैं लेकिन उन्होंने मद्रास प्रान्त में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा काम किया था। उन्होंने मद्रास कांग्रेस में फूट नहीं होने दी। वह बदला लेने की प्रवृत्ति नहीं रखते लेकिन राजनैतिक विरोधियों से वह बड़ी मजबूती से भिड़ते हैं और हिम्मत से मुकाबला करते हैं। जब वह मद्रास के मुख्य मंत्री हुए थे तो उन्होंने सी० सुब्रह्मण्यम् और एम० भक्तवत्सलम् को अपने मंत्रिमण्डल में लिया था हालांकि सुब्रह्मण्यम् और भक्तवत्सलम् ने पार्टी नेता के प्रश्न पर उनका घोर विरोध किया था।

एक बार कामराज से पूछा गया कि क्या वह दूसरों की भाषा नही समझते तो उन्होंने कहा, "ईमानदारी भी एक भाषा है। चरित्र खुद बोलता है और इन भाषाओं को गवार से गंवार समझ लेता है फिर परेशानी किस बात की ?" इसमें कोई शक नही कि कामराज की असली भाषा ईमानदारी और चरित्र है और इस भाषा को सब समझते हैं और इसी कारण वह सफल व्यक्ति रहे हैं और दोबारा उन्हें फिर कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया था।

आखिरकार कामराज की सफलता का कारण क्या है ? जो उनसे परिचित हैं वह भलीभांति जानते हैं कि उनको जनता से सच्चा प्रेम है। वह उनके दिलों की आवाज है और उनके दिल की बात कहते हैं। वह निःस्वार्थ कार्यकर्ता हैं। वह सीधी सादी जिन्दगी बसर करते हैं। उन्हें रहन के लिए बड़े बड़े महल नहीं चाहिए और सवारी के लिए लम्बी लम्बी मोटरों की जरूरत नहीं। उन्हें दौलत से कोई खास प्रेम नहीं है। वह ओहदों के भूखे नही हैं। वह जनता के सुख सुनने और दूर करने में मगन रहते हैं। जब वह मुख्य मन्त्री थे तो उन्हें हर एक आदमी आसानी से मिल सकता था। डा० राम मनोहर लोहिया, जो किसी भी कांग्रेस वाले के लिए एक शब्द भी अच्छा नहीं कह सकते थे उन्होंने भी कहा था कि नेहरू के बाद सबसे प्रिय नेता कामराज हैं।

उत्तर दिया, "हां" और एकदम गिरफ्तार कर ली गईं। वह भी आगा खां पैलेस में ले आई गई जहां गांधी जी नजरबन्द थे। उस कारागार में उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। वहां के वातावरण ने उनकी तन्दुरुस्ती पर बुरा असर डाला और उनका दुर्बल शरीर जवाब देने लगा। शिवरात्रि के दिन उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र श्री देवदास गांधी ने कहा था कि 'बा' सेवाग्राम वापस जाने के लिए लालायित थी और जेल के वातावरण और वहां की बड़ी बड़ी दीवारों ने उनके स्वास्थ्य को बड़ा धक्का पहुंचाया।"

हम गांधी जी के आश्रम के बारे में बहुत सुनते हैं पर उनमें कस्तूरबा के काम और प्रभाव के बारे में बहुत कम जानते हैं। दक्षिण अफ्रीका से सन् १९१५ में लौटने के बाद गांधी जी ने अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। कस्तूरबा तुरन्त उसकी सदस्या और कार्य संचालिका बन गईं। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इस आश्रम की सदस्या थीं। उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में कस्तूरबा के बारे में लिखा, "वह विजय की घड़ियों में अपने पति के बाजू में उसी तरह सरल, शान्त और सौम्य बैठीं जिस तरह परीक्षा और दुख की घड़ियों में शान्त और निर्भय रहती थीं। मुझे उनके उस रूप का भी आभास मिलता है जब विदेशी भूमि में वह घायल सैनिकों के लिए मोटे कपड़े तैयार करती थी। दक्षिणी अफ्रीका का महान नेता, जिसने श्री गोखले के शब्दों में 'मिट्टी से वीर तैयार किए', कुछ अस्वस्थ और थकित भूमि पर आराम से बैठा हुआ फलों और फलियों का साधारण भोजन कर रहा था और उसकी पत्नी इस तरह कार्य मग्न और संतुष्ट दिखाई पड़ती थी मानों वह विश्व विख्यात नायिका नहीं, जिसने अपने राष्ट्र के लिए हजारों कष्ट भोगे हैं, बल्कि सामान्य गृहिणी है जो गृह कार्य के सैकड़ों छोटी मोटी बातों में व्यस्त है।"

यह बात याद करके बड़ा दुख होता है कि उनके गिरते हुए स्वास्थ्य ... ब्रिटिश सरकार ने उन्हें रिहा नहीं किया। यह मानवीय

आधार पर भी मुक्त नहीं की गई। कस्तूरबा का जिन परिस्थितियों में निधन हुआ उसे भुलाना सम्भव नहीं है। अंग्रेज, जो सभ्यता का बड़ा भारी दावा करते हैं, उन्होंने कस्तूरबा को जेल में मरने दिया यह उनके लिए बड़े कलंक की बात है। यह बड़े दुख की बात है कि जो प्राणी किसी को कभी नुकसान पहुंचा ही नहीं सकता था उसे एक शक्तिशाली साम्राज्य के बन्दी के रूप में जीवन से हाथ धोना पड़ा। जब तक कस्तूरबा का नाम याद रहेगा तब तक ब्रिटेन के अधम कार्य को भुलाया नहीं जा सकता।

उनका बेटा हीरालाल उनके लिए दुख का कारण हुआ। उसने अपना मजहब भी बदल दिया था। कस्तूरबा ने उसे एक बार एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने हृदय की वेदना प्रकट करते हुए कहा था, "मैं नहीं जानती कि तुमने अपना प्राचीन धर्म क्यों बदला। यह तुम्हारी मर्जी की बात है। पर मैंने सुना है कि तुम भोले और अज्ञानी लोगों से अपना अनुगमन करने के लिए कहते फिरते हो। तुम अपनी मनोदशा में क्या निर्णय कर सकते हो? लोग इस बात से गुमराह हो सकते हैं कि तुम अपने पिता की संतान हो। तुम धर्म प्रचार करने योग्य नहीं हो। मैं कहती हूं कि तुम ठहरो, विचार करो और अपनी मूर्खता से विमुख होओ। मुझे तुम्हारा धर्म परिवर्तन पसन्द नहीं। पर जब मैं ने तुम्हारा वक्तव्य पढ़ा कि तुम अपना सुधार चाहते हो तो मुझे तुम्हारे धर्म परिवर्तन में भी मन ही मन इस आशा से खुशी हुई कि तुम सात्विक जीवन आरम्भ करोगे।"

उनके दिल में अपने बेटे की हरकतों के कारण दर्द था और उन्हें यह जानकर बहुत दुख हुआ कि हीरालाल के कुछ मुसलमान मित्र उसके निकम्मेपन का फायदा उठाते थे। उन्होंने उसके मित्रों को एक पत्र लिखा था जिसमें उनकी तीव्र निन्दा करते हुए उन्होंने कहा था, "मेरे पुत्र के तथाकथित धर्मपरिवर्तन से उसका उद्धार होने के बजाय मैं देखती हूं कि इससे स्थिति और भी बिगड़ गई है। कुछ लोग तो

उसे 'मौलवी' का पद देने की सीमा तक चले गए हैं। क्या यह उचित है ? क्या तुम्हारा धर्म मेरे लड़के जैसे लोगों को "मौलवी" कहलाने की अनुमति देता है—पर एक दुखी मां की यह निर्बल पुकार कदाचित् उनकी अन्तरात्मा को द्रवित करे जो तुम्हें प्रभावित कर सकते हैं। मैं तुमसे यह कहना अपना कर्तव्य समझती हूं, जैसा मैं अपने पुत्र से कह रही हूं, कि तुम परमात्मा की नजरों में ठीक काम नहीं कर रहे हो।"

कस्तूरबा ने भारतीय नारीत्व का स्तर बढ़ाया और जीवन में बड़ी हिम्मत और सब्र से काम लिया। उनके कार्य भारतीय नारियों के पथ प्रदर्शन करते रहेंगे। उनके निर्बल शरीर में दृढ़ इच्छा शक्ति छिपी हुई थी। कस्तूरबा भारतीय नारीत्व की सजीव प्रतीक तथा आभूषण थी। श्रीमती नायडू के शब्दों में वह मृत्यु से अमरत्व को प्राप्त हो गई और उनका नाम इतिहास की महिला मंडली में सदैव एक निराली शान से चमकेगा।

कमला नेहरू

जो इंसान अपनी पूरी जिन्दगी न जी पाया हो और जिसने थोड़े ही समय में अपनी योग्यता और वीरता का सबूत दे दिया हो उसके बारे में यह कहना ज्यादा कठिन नहीं है कि यदि वह जीवित होती तो वे देश की कितनी सेवा करती। कमला नेहरू को लोग जवाहर लाल नेहरू की पत्नी के नाते तो अच्छी तरह से जानते हैं परन्तु यह दुख की बात है कि ज्यादातर लोगों को उनकी खुद की योग्यता और शराफत का अंदाजा नहीं है। बड़े आदमियों की पत्नियों को अक्सर बहुत त्याग करना पड़ा है और उनके पतियों को उनके लिए बहुत कम समय रहा है। "कमला मुझसे किसी बात की भी मांग नहीं करती थी और वह किसी का पुछल्ला होकर नहीं रहना चाहती थी। उनके दिल में क्या अरमानें थी मैं जान न पाया क्योंकि मैं अपने काम में जुटा रहता था", जवाहरलाल जी ने लिखा था।

कमला का शरीर नाजुक था लेकिन उनकी आत्मा मजबूत थी। घातक बीमारी के चंगुल में फंसने के बावजूद भी उन्होंने जिन्दगी में कभी आशा न छोड़ी। उनके चेहरे पर एक मुसकान सदैव खेलती रहती थी। वह अपनी बीमारी को अपने पति के लिए कयामत नहीं बनाना चाहती थी। उनकी यही इच्छा थी कि उनके कारण उनके पति को कोई ऐसा काम न करना पड़े जिससे उनके गौरव और प्रतिष्ठा को धक्का लगे। उन्होंने एक बार सुना कि जवाहर लाल जी उनकी बीमारी के कारण सरकार

को कोई आश्वासन देकर जेल से छूट जाएंगे। उन्हें इस खबर ने बहुत सताया और ज्योंही जवाहर लाल जी उनको देखने घर पहुंचे उन्होंने कहा, "मैंने सुना है कि तुम सरकार को कोई आश्वासन देने वाले हो, ऐसा न करना।" खबर तो गलत थी ही लेकिन जवाहर लाल जी को उनकी बात सुनकर बहुत खुशी हुई क्योंकि वह उन लोगों की बड़ी कदर करते थे जो अपना सिर किसी के सामने नहीं झुकाते थे और हर मामले में हिम्मत से काम लेते थे।

लोगों को ऐसा अन्दाजा है कि कमला शुरू से ही दुर्बल थीं और हमेशा उनकी बीमारी ही की चर्चा की जाती है। यह बात बिल्कुल गलत थी। जब उनकी शादी हुई थी तब वह तन्दुरुस्ती की एक अच्छी तसवीर थीं। उनकी अच्छी सेहत के कारण ही मोतीलाल जी ने उन्हें अपने बेटे की शादी के लिए चुना था। वह चाहते थे कि घर में कोई ऐसी तन्दुरुस्त लड़की आए जो जवाहर लाल की दुर्बल सेहत की ठीक से देखभाल कर सके। कमला की बीमारी ने मोतीलाल जी की इस आशा पर पानी फेर दिया।

कमला का जन्म १ अगस्त १८९९ में हुआ था। वह जवाहर लाल कौल की बेटी थीं। ८ फरवरी, १९१६ को उनका विवाह जवाहर लाल नेहरू से हुआ। शादी के समय उनकी उम्र १७ साल की थी। उनकी मृत्यु २८ फरवरी १९३६ को स्विट्ज़रलैंड में हुई। इस अवसर पर उनके पति और उनकी पुत्री उनके पास मौजूद थे। उनकी मृत्यु के बाद रवीन्द्र नाथ टैगोर ने जवाहर लाल नेहरू को कमला के बारे में लिखा था, "[illegible] उनके जीवन और मरण में अपनी [illegible] को [illegible] और वह तुम्हारी [illegible] की अमर ज्योति के रूप में [illegible] है।"

कमला, जवाहर लाल की [illegible] नहीं करती थीं। [illegible] को बड़ा बड़ा कर [illegible] थीं न उन्हें [illegible] करती थीं। वह जवाहर की कोई [illegible] और [illegible] न करके [illegible] थीं कि उसमें कम से जवाहर लाल

जी से आशा ही नहीं की जाती थी। कमला के बारे में जवाहर लाल जी ने लिखा है, "सख्त बीमार होते हुए भी वह भविष्य से आशाएं रखती थी। उनकी आंखों में आभा और तीक्ष्णता थी। मुखड़ा सामान्यतः प्रसन्न रहता था। मैं ने उनसे वही ग्रहण किया जो उन्होंने मुझे प्रदान किया। इसके बदले में मैं ने उन्हें इतने वर्षों में क्या दिया? स्पष्टतः मैं असफल रहा और सम्भवतः उस पर इसकी गहरी छाप पड़ी।"

कमला नेहरू स्वराज्य भवन, इलाहाबाद में गरीबों के लिए एक अस्पताल चलाती थीं। उनकी बड़ी इच्छा थी कि वह एक बहुत बड़ा चिकित्सालय इलाहाबाद में पीड़ित लोगों के लिए खोल सकें। जब वह अपने इलाज के लिए हिन्दुस्तान से बाहर जा रही थीं तो उन्होंने गांधी जी से यह प्रार्थना की थी कि यदि उनका देहान्त हो जाए तो वह इलाहाबाद में एक बड़ा अस्पताल जरूर खुलवा दें। उनकी मृत्यु के बाद गांधी जी ने उनकी इच्छानुसार इलाहाबाद में कमला नेहरू अस्पताल खुलवाने में बड़ी सहायता की और उसकी नींव डालते समय उन्होंने कहा था, "वह योरोप स्वास्थ्य की खोज में गई परन्तु मौत मिली। जब वह योरोप जा रही थीं तो उन्होंने मुझसे एक अस्पताल खुलवाने के लिए कहा था और मैंने उनसे उस काम के करने का वादा किया था।"

रह रह कर इस बात का ख्याल आता है कि यदि कमला जीवित होतीं तो उन्होंने बड़ी ख्याति पाई होती और उनकी मौजूदगी उनकी पुत्री इंदिरा के लिए एक बड़ा भारी सहारा होती जिनके कंधों पर देश की बड़ी बड़ी जिम्मेदारियों का भार है। इंदिरा बिना पति, पिता और माता के एक बड़ा भारी अकेलापन महसूस करती होंगी। वह अपने दिल की बात घर में किसी से नहीं कह सकतीं जिससे उनका दिल हलका हो जाए लेकिन उनमें अपनी माता कमला की तरह एक अनोखी शक्ति है जो गम्भीर परिस्थितियों में उनका साथ देती है।

कमला की एक निराली हस्ती थी। उनके साथ जो काम करते थे वह प्रसन्न रहते थे और प्रभावित होते थे। वह अपने सहयोगियों की कठिनाइयों को हमेशा अच्छी तरह समझती थी और उनकी मदद करती थी। वह बड़ी साहसी, सत्यवादी, व्यवहार में सीधी और साफ थी। उनके गुणों के कारण गांधी जी उनको बहुत चाहते थे और अक्सर तारीफ करते थे। पीड़ित मानवता के लिए उनके दिल में बड़ी हमदर्दी थी। वह कई मामलों में असाधारण महिला थीं। आज जब हम उनकी याद करते हैं तो हमारे मुंह से यह शब्द निकलते हैं, "मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि तुम चली गई। तुमने धरती से प्यार किया, तुम्हारी आंखों में आभा थी जो तुम्हारी मुसकान में सहजाती थी। वह मुसकान जो मृत्यु को गीत या कविता समझती है। तुम्हारा तो नित नूतन जन्म होता है तथा नव रूप में वैभव को अवतरित में सामने हो। अरे। क्या देहान्त पर ऐसा यौवन, ऐसा प्रेम, ऐसा जीवन खत्म हो सकता है?"

कमला नेहरू में अपना व्यक्तित्व था। उसका प्रभाव उनके साथी और सहकर्मी करते हैं। जिन्हें उनके साथ कार्य करने का अवसर मिला वे कहते हैं कि उनकी उपस्थिति मात्र प्रेरणाप्रद थी और ऐसा लगता था मानो दया की बहन उनके साथ हो। वह भारतीय नारी उदाहरण की मूर्ति थी, जो सदा कार्य में जुटी रहती थी। एक बार वह अपने पति के साथ हैदराबाद गई तथा वहां पर्दानशीन औरतों की एक सभा में उन्होंने भाषण दिया। इसका उन औरतों पर बड़ा असर पड़ा। कुछ दिन के बाद हैदराबाद के कई लोगों ने शिकायत की कि उनकी औरतों के रुख में पतियों के प्रति उस परिवर्तन के लिए कमला नेहरू जिम्मेदार है।

कमला नेहरू और जवाहर लाल साथ साथ अधिक समय व्यतीत नहीं कर सके। देश में जवाहर लाल की सेवाओं की मांग थी और वह एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करते थे। कमला नेहरू रोग

आक्रान्त हो गई तथा उन्हें चिकित्सा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान जाना पड़ा । इसका रोगग्रस्त महिला पर असर पड़ा । परन्तु वह बड़ी समझदार थीं । वह जानती थी कि उनके पति एक पुण्य कार्य में रत हैं तथा देश के लिए प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं । वह उन पर अज्ञात रूप से प्रभाव डालती थीं । आरम्भ में जवाहरलाल ने इसका पूर्ण महत्व अनुभव नहीं किया परन्तु बाद में उन्होंने अनुभव किया कि वह उन पर यथायोग्य ध्यान नहीं दे रहे हैं । "भारत की खोज" में उन्होंने लिखा है, "मेरा पिछला जीवन मेरे सामने खुलता जा रहा था और कमला मेरे पास खड़ी थी । वह भारतीय नारी या नारीत्व का ही चिन्ह बन गई थी । कभी कभी वह हमारे प्यारे भारत के सम्बन्ध में मेरे विचारों से घुल मिल जाती थी ।"

उनका शरीर टूटे हुए फूल के समान था पर उनकी देशभक्ति-पूर्ण भावना की महक, मादक थी । वह स्वर्णिम ज्योति पुंज की दीपक थीं । पीड़ित मानवता के लिए उनके हृदय में अपार सहानुभूति थी । वह जरूरतमंदों के प्रति दयालु थी तथा उनकी यथाशक्ति सहायता करती थी । वह भारतीय नवनारीत्व की प्रतिनिधि थी पर प्राचीन मूल्यों से अवगत थी तथा उनका दृढ़ता और विवेक पूर्वक निर्वाह करती थी । वह कई दृष्टियों से असाधारण महिला थीं ।

कमला जी में बनावटीपन बिल्कुल नहीं था । उनमें कोई व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं थी । मूक और सच्ची सेवा ही उनका जीवन-व्रत था । वह लज्जालु और प्रेममयी थीं । अपनी अस्वस्थ अवस्था में भी उन्हें दूसरों की चिन्ताओं और कठिनाइयों का ख्याल बना रहता था और उनकी सहायता करने के लिए लालायित रहती थीं। जब वह किसी को दुख दर्द में देखती तो उनका दिल भर आता था । सेवा धर्म के अतिरिक्त उनका कोई धर्म नहीं था ।

गोविन्द वल्लभ पन्त

जिस शान से पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने उत्तर प्रदेश में हुकूमत की वह लोगों को बहुत दिन तक याद रहेगी । वह सब्र और सहनशीलता की मूर्ति थे । लोग उनके सामने जाकर बलबलाते रहते थे । जब पंत जी उनकी बात सुन लेते थे तो वह शांत होकर घर लौटते थे । पं० गोविन्द वल्लभ पंत देश के उन नेताओं में से थे जिन्होंने अपनी योग्यता की देश पर एक जबरदस्त छाप लगाई थी । सालों तक उन्होंने उत्तर प्रदेश कांग्रेस और शासन को अपनी मुट्ठी में रखा था । उत्तर प्रदेश में वही होता था जो पंत जी चाहते थे । स्वतंत्रता संग्राम के एक महान सेनानी के अतिरिक्त वह एक निपुण प्रशासक भी थे । बरसों तक वह उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे । पं० जवाहर लाल नेहरू उनका बड़ा आदर करते थे और उनकी योग्यता में उनका पूर्ण विश्वास था । पंत जी पेंचीदे मसलों और जटिल समस्याओं को सुलझाने में बड़े चतुर थे । जवाहर लाल जी पंत जी की सधी हुई राय और दूरदर्शिता में पूरा ... पंत जी को भी जवाहर लाल जी के लिए बड़ा आदर

नहीं ?" पंत जी ने उत्तर दिया, "अरे भाई रफी, जवाहर लाल जी एक ही तो आदमी है जिनकी मुखालफत करने में मुझे तकलीफ होती है। मै उनका दिल नहीं दुखाना चाहता। देर सबेर हम सब ठीक कर लेंगे।"

पंत जी एक योग्य शासक थे। नौकरशाही के उच्चतम अधिकारी उनका सम्मान करते थे और उनसे घबराते थे। फाइल्स देखने और समझने में माहिर थे। एक दिन एक बड़े अफसर ने मुझसे कहा था कि जब पंत जी किसी अफसर से यह कहते थे कि "कल हमसे मिल लेना" तो उसकी नींद हराम हो जाती थी कि ईश्वर जाने क्या पूछ बैठें।

एक बार पंडित कमलापति त्रिपाठी के साथ में पंत जी के घर कई दिन ठहरा था। उस समय वह उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री थे। उन्होंने राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद जी को एक दिन अपने घर खाने की दावत दी थी। उसमें ज्यादातर बड़े बड़े लोग आमंत्रित थे लेकिन एक या दो साधारण व्यक्ति भी बुलाए गए थे। मैं ने उस दावत मे बराबर यह देखा कि पंत जी ने छोटे मेहमानों की ओर अधिक ध्यान दिया ताकि उन लोगों को उस बड़ी दावत में अटपटा न लगे। यह उनके बड़प्पन और शराफत की निशानी थी।

जब पंत जी जवान थे तब उनके पास एक दिन एक बड़ा विचित्र पत्र पहुंचा। वह पत्र वास्तव में एक दूसरे पंत के लिए था। उस पर केयर आफ (द्वारा) गोविन्द वल्लभ पंत लिखा था। पत्र भेजने वाल उन पंत का नाम लिफाफे पर लिखने को भूल गया था जिनके लिए वास्तव में वह पत्र था। पंत जी ने जब उस पत्र को खोला तो देखा कि यह पत्र किसी प्रेमिका का है और प्रेम उद्‌गारों से ओत प्रोत है। पंत जी इस पत्र को पाकर चकित रह गए और उन्होंने अपने मित्रों से कहा कि भाई यह पत्र मेरे पास कैसे आया। धीरे धीरे यह खबर उन हजरत के पास पहुंची जिनके लिए वह पत्र वास्तव में था। पंत जी ने वह पत्र चुपचाप लौटा दिया और कहा, "लिखने वाले से कह दो कि लिफाफे पर तुम्हारा नाम भी लिख दिया करें।"

जवाहर लाल नेहरू पंत जी को दिल्ली सरकार में लेना चाहते थे परन्तु पंत जी यू० पी० में ही काम करना चाहते थे। उन्हें अपने सूबे से बड़ा प्रेम था और यह भी बात थी कि वह यू० पी० की हुकूमत छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। दिल्ली में उनकी धाक जम सकेगी या नहीं शायद उन्हें पूरा यकीन नहीं था। जब जवाहर लाल ने कहा कि उन्हें जाना जरूरी है तो पंत जी बोले, "मुझे अब 'फाइनेन्स' के बारे में ज्यादा ज्ञान नहीं है। सर स्टैफर्ड ऐसे आदमियों से मिलना होगा और उनके मुकाबिले में नहीं तो कम से कम सब मामलात को अच्छी तरह जानकारी तो होनी ही चाहिए। उसके लिए काफी पढ़ने की जरूरत है और अब इस उम्र में वह मुश्किल है।" जवाहर लाल जी ने कहा, "पंत जी आप टालमटोल कर रहे हैं, आप आना नहीं चाहते।" पंत जी जवाहर लाल जी को किसी बात में जल्दी 'ना' नहीं करना चाहते थे। वह उठकर खड़े हो गए और सिर हिलाते हुए कहा, "जवाहर लाल जी जरा सोच लेने दीजिए। आपकी बात टाली कैसे जा सकती है।" काफी समय के बाद जवाहर लाल जी के कहने पर वह दिल्ली चले ही गए और वहां उन्होंने नेहरू जी के कामों में हाथ बंटाया और पंत जी की धाक जम गई।

पंत जी बड़े सब्र के आदमी थे। जब वे किसी को मानते थे तो वे उसका बड़ा ख्याल करते थे। एक दिन उनके एक असंतुष्ट मित्र उनसे झगड़ा करने गए और उन्होंने करीब एक घंटे तक पंत जी की कटु आलोचना की। पंत जी ने एक शब्द भी न कहा। अंत में जब उनके आलोचक मित्र थक कर चुप हो गए तब पंत जी ने मुस्कुरा कर बड़ी शांति से पूछा, "क्या आपको कुछ और कहना है?" पंत जी के धैर्य, नम्रता और सहनशीलता का उनके आलोचक पर बड़ा प्रभाव। गए थे शिकायत करने और लौटे तारीफ करते हुए!

पंत जी बात के बड़े मीठे थे और उन्हें गुस्सा बहुत कम आता था जब उन्हें क्रोध आता था तो वे बड़ी सख्ती से बर्ताव करते थे।

जब वे अहमदनगर किले से बरेली शहर ले जाए जा रहे थे तो बरेली से कुछ स्टेशन पहले ही एक वीरान स्टेशन पर ट्रेन रोकी गई और पंत जी को गाड़ी से उतारने का प्रबध किया गया। जब वे ट्रेन से उतर रहे थे तो एक बड़े सी० आई० डी० अफसर ने पंत जी से कोई गैरमौजूं बात कर दी। पत जी का चेहरा तमतमा उठा और उन्होंने अफसर को बुरी तरह झिड़का। जवाहर लाल जी, जो उनके साथ गाड़ी में थे पंत जी का गुस्सा देखकर दंग रह गए और उन्होंने नरेन्द्र देव जी से कहा, "मैंने पंत जी को ऐसे गुस्से में कभी नही देखा।" मैं भी उस समय उनके पास खड़ा था और मेरे मुह से निकल गया "कोई खास गुस्सा तो नही आया।" इतना सुनते ही जवाहर लाल जी मेरे ऊपर बम की तरह टूट पड़े और बोले, "मालूम होता है आपने पंत जी की तरफ गौर नही किया। वे गुस्से से कांप रहे थे।" मैंने गलती मानकर जान छुड़ाई।

पंत जी के मन में क्या रहता था उसका पूरा पता उनके मित्रों को भी नहीं चलता था। जब उनसे लोग बात करते थे तो उनका सिर हिलता रहता था। कभी कभी तो यह पता चलना कठिन हो जाता था कि वे 'हां' कह रहे है या 'ना'। एक दिन कुछ लोग पंत जी से मिलने गए। जब वह लोग लौट कर आए तो आपस में मतभेद हो गया। उनमें से कुछ लोग कहने लगे कि जो बातें उनसे कही गई हैं उन्होंने उस पर 'हां' कर दिया है। कुछ लोगों ने कहा 'ना' किया है। फिर यह तै किया गया कि पंत जी के पास फिर चला जाए और बात की सफाई की जाए। वह लोग पंत जी से मिलने गए और पूछा कि उन्होंने क्या कहा। पता चला कुछ बातों पर 'हां' कहा था, कुछ बातों पर 'ना' और दोनों तरफ के लोग खुश होकर घर लौटे।

पंत जी अपने मित्रों और साथियों का बड़ा ख्याल रखते थे। वे शिष्टाचार और शराफत के पुतले थे। जून १९४२ में मैं आचार्य कृपलानी और सुचेता कृपलानी के साथ नैनीताल गया था। मोटर

से उतरते ही हम लोग पंत जी को देखने गए। पंत जी अस्वस्थ थे। मैंने उनको उस दिन पहली बार देखा था। लम्बे, विशालकाय, प्रभावोत्पादक डील डौल वाले तथा बड़ी आंखें व मूंछ वाले पंत जी एक बड़ी सी चारपाई पर लेटे हुए एक किताब पढ़ रहे थे। ज्योंही हम लोगों को देखा वह अस्वस्थ होते हुए भी एक दम खाट पर उठकर बैठ गए और हमारी यात्रा और दूसरी बातों के बारे में लगातार पूछते ही रहे। हम लोग उनकी तबीयत का हाल पूछने गए थे और वे हमारी यात्रा का हाल पूछते रहे! कुछ ही समय बाद हमें उनके प्रख्यात अतिथि सत्कार का अनुभव हुआ और हम लोगों की बेहद खातिर की गई। पंत जी अपने मेहमानों और मुलाकातियों का बड़ा ख्याल रखते थे। १६४५ के जून में पं० जवाहर लाल नेहरू अलमोड़ा जेल से छूटे तो बहुत से लोग नैनीताल में उनसे मिलने गए। मैं उस दिन पंत जी का मेहमान था। मैंने देखा कि कितने ही लोग बिना बुलाए उनके यहां पहुंच गए और डेरा डाल दिया जैसे उनका कोई खानदानी अधिकार पंत जी व उनकी जायदाद पर हो। पंत जी यद्यपि अस्वस्थ थे परन्तु मेहमानों के मेले से परेशान नहीं हुए और अपनी रोग शैया पर से उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति की आराम और सुविधा की देखभाल की।

आज जब हम यू० पी० की हालत देखते हैं तो पंत जी की याद सताती है। वह एक राजनैतिक जादूगर थे। कठिन परिस्थितियों से घबड़ाते नहीं थे। जटिल समस्याओं को सुलझाने में माहिर थे। मिला जुलाकर लोगों से काम लेने में बड़े निपुण थे। वह बड़ी सूझ बूझ के आदमी थे और लोगों को अपने कब्जे में रखना जानते थे। उनसे तिकड़म बाजी करना आसान न था। वह इन्सान के दिमाग को अच्छी समझते थे। वह एक बड़े जोरदार नेता व योग्य पुरुष थे।

पंत जी कई बार जेल गए और उन्हें कठिन यातनाएं झेलनी पड़ीं। १६२८ में साइमन कमीशन को लखनऊ में काला झंडा दिखाते ... पुलिस की कई लाठियां पड़ी। उस दिन जवाहर लाल

ने भी कई डंडे खाए थे। उस घटना का वर्णन करते हुए नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "परन्तु भाग्यवश मेरे किसी अंग में बड़ी चोट नहीं आई। हमारे कई साथी कम भाग्यशाली थे और बुरी तरह घायल हो गए। गोविन्द वल्लभ पंत, जो मेरे पास ही खड़े थे, खासा अच्छा निशाना बने हुए थे क्योंकि वह ६ फुट कुछ इंच ऊंचे थे और तब की खाई हुई चोट एक ऐसी तकलीफ छोड़ गई जिसने उनकी कमर को लम्बे अरसे तक सीधा न होने दिया और कर्मठ जीवन में बाधा पहुंचाई। असल मारपीट ज्यादातर यूरोपीयन सार्जेन्टों ने की।"

अक्सर देखा गया है कि जो लोग वैधानिक बारीकियों में व्यस्त रहते हैं वे अपना क्रान्तिपूर्ण उत्साह खो बैठते हैं और किसी भी प्रकार के संघर्ष के प्रति उदासीन हो जाते हैं। परन्तु पंत जी के साथ यह बात नहीं थी। मुझे कोई भी ऐसा अवसर विदित नहीं है जब पंत जी ने किसी आन्दोलन में इच्छापूर्वक भाग न लिया हो या जिसका विरोध किया हो। उन्हें वैधानिकता की उपादेयता का पूरा ज्ञान था पर वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि एक मंजिल ऐसी आती है जब वैधानिकता बेकार पड़ जाती है और क्रांन्ति मार्ग ही एक मात्र अवलम्बन रह जाता है। विधान सूत्र की बारीकियों को सुलझाते हुए तथा विपक्षी को तर्क से पराभूत करते हुए पंत जी को देखने में एक आनन्द का अनुभव होता था। अपने विपक्षी का खंडन करते समय वह मुश्किल से किसी कठोर शब्द का प्रयोग करते थे, उसकी हंसी उड़ाने की भी कोशिश नहीं करते बल्कि तर्क और युक्ति के बोझ से ही अपना पड़ला भारी कर देते थे।

सन् १९०५ में उन्होंने इलाहाबाद म्योर सेन्ट्रल कालेज में नाम लिखाया और बड़ा तेजपूर्ण विद्यार्थी जीवन बिताया। जब उनके साथी गप्पें लगाया करते थे तो वह अपने कमरे में बैठे आधी रात तक पढ़ा करते थे। अपने सहपाठियों के बीच पंत जी नेतृत्व करते थे और

सहकर्मियों को उत्साह प्रदान करते थे। उनकी हिम्मत, ईमानदारी और निर्भीकता का उनके साथियों पर बड़ा असर पड़ा और वे कहा करते थे कि पंत एक दिन बड़ा आदमी बन कर रहेगा। पंत जी ने उनकी आशा पूरी कर दी। पंत जी की वकालत नैनीताल में खूब धड़ल्ले से चलती थी पर धीरे धीरे राजनीति ने वकालत पर फतह पाई और उन्होंने वकालत से छुट्टी ले ली। अपने काम करने की लगन से उन्होंने दूसरे कार्यकर्ताओं पर बड़ा प्रभाव डाला। १६१६ में वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गए थे। विधान वक्ता के रूप में उन्होंने अपनी योग्यता दिखाई और सन् १६३७ में संयुक्त प्रान्त की धारा सभा में कांग्रेस पार्टी के नेता चुने गए। उन्होंने अपना मंत्रिमंडल बनाया और स्वयं मुख्य मंत्री के रूप में काम किया। मुख्य मंत्री के कठिन भार से उनकी तन्दुरुस्ती खराब हो गई और सन् १६४२ में जब वह पकड़े गए तो उनका शरीर जर्जर हो रहा था। अहमदनगर किले के बंदीगृह ने उनका स्वास्थ्य और भी बिगाड़ दिया। सन् १६४७ और १६५१ में राज्यवासियों ने उनको फिर मुख्य मंत्री चुना।

पंत जी औषधियों का नियमित रूप से सेवन करते थे। वह उन पर अधिक निर्भर रहते थे। कदाचित् वह उनके लिए अपरिहार्य था तथा उन्हें अपना कार्य करने में सहायता पहुंचाती थी। वह बड़े कार्यशील तथा कर्तव्य परायण व्यक्ति थे। उन्होंने कांग्रेस संगठन में बड़ी एकता रखी। वह दिल्ली में विभिन्न राज्यों के मंत्रिमंडलों के आंतरिक झगड़े सुलझाते रहते थे। यह राज्य कांग्रेस दल तथा देश के

राजकुमारी अमृत कौर

महलों में रहने वाली महिलायें, जो सुख से जिन्दगी बिताती हैं, उनके लिए मोटी खादी पहनकर, दरवाजे-दरवाजे घूमना, सडकों पर जुलूस निकालना और जेल जाना आसान काम नहीं है, परन्तु राजकुमारी अमृत कौर ने ये सब बातें कर दिखाई और भारत की आज़ादी में जोरों से हिस्सा लिया। उनके पिता, राजा हरनाम सिंह ने ईसाई मजहब को अपनाया था और वे शिक्षा के कार्य में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। उनके घर, देश के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ आकर ठहरते थे और गोपाल कृष्ण गोखले से उनकी बड़ी दोस्ती थी। अमृत कौर इन नेताओं की बातें ध्यान से सुनती थीं और उनकी बातों से प्रभावित हुई थीं। उन्हें लोगों की गरीबी देखकर बड़ा दुःख होता था और वह उनकी मदद करना चाहती थी। उन्होंने हरिजनों के लिए हमेशा अपनी आवाज बुलन्द की थी और एक बार कहा था, "जब तक भारत अपने उन पापों के लिए प्रायश्चित् नहीं करेगा जो उसने हरिजनों के साथ किए हैं, तब तक वह अपना सर दुनिया के सामने ऊंचा न कर सकेगा।"

राजकुमारी बड़े बाप की अकेली बेटी थीं और उनकी तालीम इंग्लैण्ड में हुई थी। उन का जन्म १८८६ में लखनऊ में हुआ था।

सहकर्मियों को उत्साह प्रदान करते थे। उनकी हिम्मत, ईमानदारी और निर्भीकता का उनके साथियों पर बड़ा असर पड़ा और वे कहा करते थे कि पंत एक दिन बड़ा आदमी बन कर रहेगा। पंत जी ने उनकी आशा पूरी कर दी। पंत जी की वकालत नैनीताल में खूब धड़ल्ले से चलती थी पर धीरे धीरे राजनीति ने वकालत पर फतह पाई और उन्होंने वकालत से छुट्टी ले ली। अपने काम करने की लगन से उन्होंने दूसरे कार्यकर्ताओं पर बड़ा प्रभाव डाला। १६१६ में वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गए थे। विधान वक्ता के रूप में उन्होंने अपनी योग्यता दिखाई और सन् १६३७ में संयुक्त प्रान्त की धारा सभा में कांग्रेस पार्टी के नेता चुने गए। उन्होंने अपना मंत्रिमंडल बनाया और स्वयं मुख्य मंत्री के रूप में काम किया। मुख्य मंत्री के कठिन भार से उनकी तन्दुरुस्ती खराब हो गई और सन् १६४२ में जब वह पकड़े गए तो उनका शरीर जर्जर हो रहा था। अहमदनगर किले के बंदीगृह ने उनका स्वास्थ्य और भी बिगाड़ दिया। सन् १६४७ और १६५१ में राज्यवासियों ने उनको फिर मुख्य मंत्री चुना।

पंत जी औषधियों का नियमित रूप से सेवन करते थे। वह उन पर अधिक निर्भर रहते थे। कदाचित् वह उनके लिए अपरिहार्य था तथा उन्हें अपना कार्य करने में सहायता पहुंचाती थीं। वह बड़े कार्यशील तथा कर्तव्य परायण व्यक्ति थे। उन्होंने कांग्रेस संगठन में बड़ी एकता रखी। वह दिल्ली में विभिन्न राज्यों के मंत्रिमंडलों के आंतरिक झगड़े सुलझाते रहते थे। वह राज्य कांग्रेस दल तथा देश के लिए एक आधार स्तम्भ थे। उनकी ईमानदारी संदेह से परे थी तथा उनको सभी ने मान्यता प्रदान की थी। पंत जी ने अपने देश की दिल भर के सेवा की और आजादी पाने के बाद उन्होंने शासन के काम में बड़ी काबिलियत दिखाई। वह मुसिबत का मुकाबला बड़े ठंडे दिल से करते थे और किसी बात से घबड़ाते नहीं थे। उन्हें अपने में विश्वास था और वह हमारे देश के एक वीर सेनानी थे।

इस बात से बहुत चोट लगी कि सरकार ने औरतों को भी बुरी तरह से बेइज्जत किया और उनके साथ भी बड़ी बेरहमी से बर्ताव किया। इस दुखदाई घटना ने भारत को आजाद कराने के उनके संकल्प को और भी पक्का किया। उन्होंने अपने देश की आजादी की लड़ाई में और जोर से हिस्सा लेना शुरू कर दिया। जलियावाले बाग की घटना के दौरान में ही वह गांधी जी के सम्पर्क में आई। उसके बाद उन्होने गांधी जी के सचिव का काम वरसों तक किया। उन्होंने एक बार लिखा था, "एक दिन गोखले जी ने मुझ से कहा था कि तुम जल्द एक उस आदमी से मिलोगी जो भारत के हित के लिए बड़े-बड़े काम करेगा। वे इन्सान गांधी जी थे। मैंने उनसे जल्दी ही सम्पर्क स्थापित किया और उन्होंने मुझे बड़ा प्रभावित किया।"

जब वह उनके आश्रम में रहने गई तो बापू ने उनको सुविधा के लिए वहां के बहुत से कानून उनके लिए लागू न होने की आज्ञा दे दी जिससे राजकुमारी को विशेष कष्ट न हो। अमृत कौर ने लिखा है, "सब लोग अपने खाने के बर्तन धोते थे, लेकिन मुझे अपनी प्लेटें न धोनी पड़ती थीं। मैं ने बापू से कहा था कि मैं सब काम करने को तैयार हूं मगर कुछ मामलों में उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। बापू में आदमियों को अपनी तरफ खींचने की शक्ति तो थी ही, मगर उनकी इससे बड़ी शक्ति यह थी कि जो उनके पास आता था वह उनके पास खुशी से रह जाता था।"

राजकुमारी बापू की सचिव थी और उन्हें बड़ी जिम्मेदारी से काम करना पड़ता था। एक बार बापू ने एक कागज एक आदमी को देने को कहा था पर राजकुमारी ने गलती से उसे दूसरे को दे दिया। गांधी जी ने उन्हें कस कर डांट लगाई और वह फूट-फूट कर रोने लगी। बापू ने कहा, "आंसू गम की निशानी नहीं है। ये गुस्सा और गरूर के चिन्ह है। अहिंसा का पहला सिद्धान्त यह है कि मनुष्य में बेहद विनम्रता होनी चाहिए।"
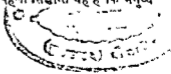
उनको खेलकूद में बहुत दिलचस्पी थी और खुद टेनिस की एक जोरदार खिलाड़ी थीं और कई बार उनको इनाम मिले थे। जब वह इंग्लैण्ड से पंजाब लौटी तो उन्होंने खेलकूद की संस्थायें बनायीं और लड़कियों को उनमें आकर्षित किया। गांधी जी भारत में आए और वे एक बार राजकुमारी से उनके घर पर मिले। राजकुमारी को उनसे मिलते ही उनके लिए बड़ी श्रद्धा हुई और वह दिन पर दिन बढ़ती ही गई। उस दिन राजकुमारी से बात करते-करते गांधी जी ने कहा, "तुम्हारे पास बहुत सी विलायती, बढ़िया-बढ़िया कपड़े हैं उन्हें तुम मुझे क्यों नहीं देती जिससे मैं उन्हें जला दूं और तुम खादी पहनने लगो?"

राजकुमारी ने बताया कि उनके पास ज्यादा विलायती चीजें नहीं थी, वह सिर्फ देश में बने हुये रेशम के कपड़े पहनती थी। गांधी जी ने कहा कि रेशम के कपड़े भी तो वैसे ही हैं। राजकुमारी बोली, "कपड़ों का जलाना तो गलत बात है।" उसके उत्तर में बापू ने कहा, "क्या उन्हें जलाना तब भी गलत है जब ये हमारी गुलामी की निशानी हैं? अच्छा, अगर तुम जलाना नहीं चाहती हो तो तुम उन्हें मुझे दे दो। मैं उन्हें साउथ आफ्रीका के गरीब हिन्दुस्तानियों में बांट दूंगा और फिर तुम चरखा कात कर अपना कपड़ा बनाने लगोगी।"

बापू की ये बात राजकुमारी को जमी तो नहीं, लेकिन उनकी राय उनके दिमाग में घूमती रही और उन्होंने खादी का प्रयोग शुरू कर दिया। उनके लिए इतना मोटा कपड़ा पहनना कोई आसान काम न था, फिर भी उन्होंने सूत कातना सीखा और खादी पहनने की आदत डाली। उन्होंने बाद में महसूस किया कि बापू की सलाह में किस कदर असलियत थी। खादी पहनने से गरीबों से उनका सम्पर्क दिन पर दिन बढ़ता गया।

जलियांवाला बाग में अंग्रेजों ने, हिन्दुस्तानियों के ऊपर जो जुल्म ढाए थे उनका राजकुमारी पर बहुत जबरदस्त असर हुआ। उन्हें

गांधी जी की इस डांट से राजकुमारी कई दिन तक गमज़दा रही और जब बापू ने उनसे कहा कि उनको उनके साथ गांव में चलना है तो वह बहुत सटपटाई क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास न था कि वह बापू के काम को ठीक तरह कर पायेंगी। दूसरे ही दिन गांव में राजकुमारी के जन्म दिवस पर बापू ने उनके पास एक नोट भेजा जिसमें लिखा था, "आदर्श सचिव वह है जो अपने प्रमुख को गलती नहीं करने देता, उनके ऊपर निगाह रखता है, और उनके उन कागजों को भी देखता है जो फाड़ कर फेंक दिए गए हैं, क्योंकि कहीं गलती से कोई जरूरी कागज न फट गया हो। इस तरह से काम करो और तुम आदर्श सचिव होगी। यह नोट तुम्हारे जन्म दिवस पर मेरी भेंट है, जो मेरी शुभकामनाओं से लदा हुआ है।"

इस खत ने राजकुमारी की हिम्मत बढ़ाई और उसे एक बहुत बड़ी चीज़ समझ कर अपने पास सदैव सुरक्षित रखा। राजकुमारी एक ईसाई महिला थीं और इस कारण उन्हें कभी-कभी कुछ अड़चनों का मुकाबला करना पड़ा परन्तु उन्होंने अपने देश की सेवा बड़े लगन से की। उनकी बेसिक एजुकेशन तथा औरतों की पढ़ाई लिखाई में बड़ी दिलचस्पी थी। उन्होंने खादी के काम को काफी आगे बढ़ाया था। उन्होंने ऑल इण्डिया वीमेन्स कान्फ्रेन्स की स्थापना की थी। उन्होंने आजादी के आन्दोलन में भाग लिया था, जेल भी काटी थी और कड़ी यातनाएं बड़ी हिम्मत से झेली थीं। १९४७ में वे हमारे देश की स्वास्थ्य मंत्री हुई थीं। उस समय लेडी माउण्ट बेटन ने उनके बारे में कहा था, "नए भारत के सामने बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियां हैं, परन्तु मैं आशा करती हूं कि मेरी बड़ी दोस्त राजकुमारी अमृत कौर, जो मंत्री हुई हैं, इन समस्याओं का बड़ी योग्यता से मुकाबला करेंगी, क्योंकि उनमें इसके लिए बुद्धि और शक्ति है।"

राजकुमारी अमृत कौर एक बड़ी शानदार महिला थी। उन्होंने ... देश में बड़ी ख्याति पाई थी। वह बड़ी उदार और दयावान थी।

जवाहर लाल नेहरू ने उनके बारे में लिखा है, "राजकुमारी जो कुछ भी कहती या लिखती थी उसमें एक विशेषता होती थी और उस पर उनकी भावुकता की छाप होती थी। उन्होंने जीवन की बहुत सी समस्याओं से संघर्ष किया था और जनता की गरीबी देखकर उन्हें क्रोध आता था और उनका चित्त दुखता था। उनका बड़ा शान्त स्वभाव था और इसी कारण उन्होंने अपनी शक्ति और योग्यता को अच्छे कामों में लगाया था।" राजकुमारी हमारे देश की एक बड़ी प्रतिष्ठित नेता थी, जिनका नेतागण और जनता दोनों बड़ा आदर करते थे।

मृणालिनी साराभाई

वह केवल ६ वर्ष की थी। उसे उस समय एक अनुभूति हुई जिसे वह पूर्ण रूप से न तो समझ ही सकी और न व्यक्त ही कर सकी। कुछ साल बाद उसे आत्म-अनुभूति हुई। उसे यह आभास हुआ कि उसकी अन्तर प्रेरणा नृत्य करने की है। उसके माता-पिता ने भी ऐसा ही सोचा और उन लोगों ने उसे नृत्य सीखने के लिए नृत्य विशेषज्ञों के पास भेजा। आज वह भारत नाट्यम में नर्तकी के रूप में विश्व विख्यात हो गई है। इसका नाम मृणालिनी साराभाई है जो संयुक्त राज्य अमेरिका के "इन्स्टीट्यूट फार एडवान्स स्टडीज इन थिएटर्स आर्ट, न्यूयार्क" द्वारा सम्मानित अतिथि के रूप में आमन्त्रित की गई थी। यह संस्था प्रत्येक वर्ष अन्य देशों के विशेषज्ञों को अमेरिकी अभिनेताओं को शिक्षा देने के लिए आमन्त्रित करती है। यह विभिन्न देशों के मध्य राष्ट्रीय सद्भावना बढ़ाने एवं सांस्कृतिक एकता प्रोत्साहित करने का एक अच्छा साधन है।

बचपन से ही मृणालिनी प्रतिदिन सुबह उठकर नृत्य का नित्य अभ्यास करती रही है। शाम को स्कूल से वापस आने पर वह इस काम में फिर व्यस्त हो जाती थी और वह नृत्य का अभ्यास तब तक करती जब तक कि वह बिल्कुल थक न जाती थी। ज्यों ज्यों वह बड़ी होती गई उसकी तल्लीनता नृत्य में बढ़ती रही तथा उसमें एक महान नर्तकी के चिन्ह दिखाई देने लगे। प्रारम्भ में उसकी शिक्षा मयूरम के मुथु कुमार पिल्लई, कांचीपुरम् के एलप्पा, पण्डन अल्लुर के चोक लिंगम पिल्लई और मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लई द्वारा हुई। बाद में वह टैगोर के 'शान्ति निकेतन' में गई तथा उसने टैगोर के नृत्य नाटक में महत्वपूर्ण कार्य किया। कुछ समय तक उसने राम गोपाल के साथ नृत्य कला का प्रदर्शन भी किया। वह नृत्य में 'क्लासिकल' प्रणाली की प्रथा को कायम रखना चाहती है। वह 'दर्पण' नामक एक नृत्य अकादमी अहमदाबाद में चलाती है जहां पर अन्य विशेषज्ञों

की सहायता से बच्चों को नृत्य की शिक्षा दी जाती है। कला जगत में यह निःसन्देह ही एक सृजनात्मक शक्ति है। यह सृजनात्मक इसलिए क्योंकि नृत्य नाटक अथवा संगीत प्रत्येक में वह मूलतत्वो, विचारो एवं हर एक कला की वास्तविक सत्यता पर ही विशेष जोर देती है। एक दिन मृणालिनी से किसी ने यह पूछा आप आभूषण क्यों नही पहनती ? उसने तुरन्त उत्तर दिया कि वह अपने आभूषणों को अपने गले में बांधकर नही फिरती। यदि कोई उसके आभूषणो को देखना चाहता है तो उसे 'दर्पण' का निरीक्षण करना चाहिए। वास्तव में 'दर्पण' कलात्मक आभूषणों का एक केन्द्र है।

मृणालिनी साराभाई पुनीत उद्देश्य से प्रेरित एक नर्तकी है। उसके लिए नृत्य जीविकोपार्जन का साधन नही वरन् एक सेवाव्रत तथा उत्सर्ग है। वह नृत्य को ईश्वर की आराधना का एक साधन समझती है। नृत्य ही उसका धर्म, उसकी उपासना तथा स्वय उसका जीवन है। वह एक विश्व विख्यात नर्तकी है। उसका नृत्य उत्तेजक, आध्यात्मिकता से ओत प्रोत कुछ दैवी भावों से मिश्रित होता है। ऐसे नृत्य विरले ही देखने में आते हैं। यदि आप उसके नृत्य को कभी देखें तो आप इतने अधिक प्रभावित हो जायेंगे कि आपको इस सुखमय क्षण का मधुर स्मरण निरन्तर हो ता रहेगा। नृत्य के मौलिक तत्वों को बड़ी कोमलता तथा दक्षता के साथ वह अपने दर्शकों पर सफलतापूर्वक जाहिर कर देती है। एक आलोचक का इसके बारे में कहना है कि "एक नर्तकी के लिए जिन

गुणों की आवश्यकता होती है, वे गुण उसमें समुचित अनुपात में पाए जाते हैं। उसकी आकृति तो नृत्य के लिए पूर्ण उपयुक्त है तथा यदि यह कहा जाय कि आकृति 'क्लासिकल' है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पेरिस तथा अन्य स्थानों में वह बहुत विख्यात है। विदेशी दर्शकों के सम्मुख वह नृत्य करना पसन्द करती है। उसका यह ख्याल है कि विदेशी लोग कला के सच्चे पारखी तथा आलोचक दर्शक होते हैं। 'फ्रेन्च आरकाइव्ज, इंटरनेशनल, डि ला डांसे' ने उसे एक तगमा और डिप्लोमा प्रदान किया है। मृणालिनी उन कलाकारों में नहीं है जिनकी देश के बाहर तो प्रतिष्ठा है परन्तु देश में उनकी अवहेलना की जाती हो। मद्रास में नृत्य विशेषज्ञों ने तो उसे 'नाट्य कला शिरोमणि' की उपाधि दी है।

मृणालिनी एक प्रतिष्ठित परिवार की है। उसके पति विक्रम साराभाई एक सुविख्यात भौतिक विज्ञान शास्त्री हैं। उसके पिता एक मशहूर वकील थे तथा माता एक प्रसिद्ध समाज सेविका है। इसके श्वसुर अम्बालाल साराभाई अहमदाबाद के एक बड़े उद्योगपति थे। मृणालिनी के एक लड़का और एक लड़की है। लड़के का नाम कार्तिकेय तथा लड़की का नाम मल्लिका है। वह अपना अधिकांश समय नृत्य में व्यतीत करती है और साथ साथ अपने परिवार की भी देख रेख करती है।

महान् नर्तकी के रूप में मृणालिनी को सम्पूर्ण विश्व जानता है परन्तु बहुत थोड़े लोग ही यह जानते हैं कि वह एक आदर्श महिला भी है। कलाकार तो अपनी कला में ही खोए रहते हैं और उन्हें दुनिया की किसी बात से वास्ता ही नहीं रहता। अन्य कलाकारों के समान मृणालिनी अपनी कला में ही नहीं खोई रहती वरन् उसे राजनैतिक परिवर्तनों, सामाजिक परिस्थितियों एवं आर्थिक समस्याओं को समझने में भी काफी रुचि है। वह एक अच्छी लेखिका भी है और इसने कई अच्छी किताबें लिखी हैं।

कभी कभी जीवन में ऐसी भूल हो जाती है जिसका क्षोभ सालों तक रहता है। कई साल हुए जब गवर्नर गिरि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे तब मैं नैनीताल राज्य भवन में ठहरा था। खाने के पहले गोल कमरे में करीब २५ मेहमान बैठे बड़ी दिलचस्पी से बातचीत कर रहे थे। समा बंधा था और किस्सों कहानियों का अहला जोरों से बह रहा था। मैं ने कई एक दिलचस्प किस्से सुनाए और लोग कह कहा मार कर हंसे। खाने का समय होते ही ए० डी० सी० साहब आ धमके और खाने के कमरे में चलने का इशारा किया। मजलिस बर्खास्त हुई और सब लोग खाने के कमरे में गए। अचानक एक महिला ने मेरी कुर्सी के पास आकर कहा, "मैं आपके पास बैठ सकती हूं ?"

"तुम कौन हो ?" मुंह से अचानक निकल गया। शायद चेहरे से रूखापन भी जाहिर हो गया परन्तु उसने बड़ी नम्रता से कहा, "मैं मृणालिनी साराभाई हूं।"

"आइए बैठिए," मै ने कहा। मैं थोड़ा सटपटाया परन्तु अपने को सम्भाल कर मैंने इतमीनान से पूछा, "विश्व विख्यात नर्तकी मृणालिनी साराभाई आप ही हैं ?"

उनकी आंखें चमकी, गर्दन थोड़ी नीचे झुकी, मुंह से एक शब्द न निकला परन्तु मुझे जवाब मिल गया।

मुझे अपने रूखेपन और अशिष्टता पर लज्जा आई परन्तु अब ह ही क्या सकता था। तीर कमान से निकल चुका था। एक द माफी मागने से काम न चलता। उसकी चर्चा न करना ही ठीक समझा।

हम दोनों ने एक दम तरह तरह की बातें करना शुरू कर दिया औ यह महसूस करने लगे कि हम लोग बहुत पुराने दोस्त हैं और एक दूस को अच्छी तरह से जानते हैं। मुझे उसकी क्षमता और बुद्धिमत्ता बड़ा प्रभावित किया। मुझ मृणालिनी ने अपनी उस समय की गलत महसूस न करने और उसे भुला देने में बड़ी सहायता की। मुझे अ

तक नहीं मालूम कि मैंने उससे अशिष्ट तरीके से उसका परिचय क्यों पूछा । उस वाक़ए के बाद से हम दोनों दोस्त भी हो गए ।

कई सालों के बाद मृणालिनी ने हंसकर एक दिन अचानक कहा, " 'तुम कौन हो', मुझे अभी तक याद है ।" मैं ने बताया, "मैं भी उसे नही भूला हू और मेरी समझ मे नही आता कि उस दिन मैं ने ऐसी धृष्टता क्यों की । आशा करता हूं आपने क्षमा तो कर ही दिया होगा।"

"कभी कभी ऐसा हो जाता है," उसने कहा और बात हंसकर टाल दी । उसकी शराफत ने मुझे प्रभावित किया और मैं अपनी धृष्टता पर बहुत शरमाया ।

लोग ऐसा सोच सकते है कि मृणालिनी अपनी लड़की को भी नृत्य कला में दक्ष बनाना चाहेंगी परन्तु वह यह नही चाहती । उसका यह विचार है कि इस महान् कला को लोग उसी समय अपनाएं जब वे अन्तः प्रेरित हों । उसने एक बार कहा था, "मैं यह नही चाहती कि कोई ऐसा आदमी नर्तक हो जिसने अपने को इसके लिए पूर्ण समर्पित नही किया हो। जिस प्रकार एक शिशु भोजन और शयन के बिना नही रह सकता उसी प्रकार एक वास्तविक नर्तकी बिना नृत्य के नहीं रह सकती । यदि नृत्य से इतना घनिष्ट लगाव नही है तब तो वह गृहस्थों लड़कियों के सदृश केवल प्रदर्शन वाली हो सकती है, नर्तकी नही । मैं अपने प्रदर्शनों, अपने कार्यों तथा नृत्य मे अपने कतिपय प्रयोगों के विषय में अधिक बात कर सकती हू परन्तु मेरे नृत्य करने का वास्तविक कारण यह है कि मै एक नर्तकी हू और मेरे लिए कोई अन्य जीवन विधि नहीं है । उसे मै जब पाच वर्ष की थी तभी जानती थी और अब तो मैं और भी जानने लगी हू ।"

एक उत्कृष्ट नर्तकी के अतिरिक्त मृणालिनी एक विश्वसनीय तथा उदार मित्र भी है । अच्छी मैत्री उसे सुखद अनुभव प्रदान करती है तथा उसके व्यवहार में शालीनता भी है । प्रेम के अद्भुत प्रभाव में उसका विश्वास है । मैं ने मैत्री तथा प्रेम के विषय में एक दिन उसके

मन जानने की इच्छा प्रकट की। उसने उस पर अपने सुलझे हुए विचार बताए। विशाल भावना के साथ उसने कहा, "मेरे लिए मैत्री तथा प्रेम, जीवन के सबसे महत्वपूर्ण तत्व हैं। क्योंकि मैत्री में अहभाव से मुक्ति मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। प्रत्येक सम्बन्ध हमारे तथा बाह्य जगत की एकीकरण की गहराई को अभिव्यक्त करता है। यह स्वत: अभिव्यक्ति है क्योंकि बिना प्रेम के न तो कोई तथ्य है और न कोई पुण्य ही। प्रेम एवं मैत्री दया उत्पन्न करती है जो सर्वोत्तम पुण्य है। मानव जाति की सभी समस्याओं के समाधान करने का प्रेम ही एक वास्तविक साधन है। कला का प्रत्येक महान कार्य, वीरता की प्रत्येक क्रियाएं प्रेम द्वारा ही की जाती हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिक स्वतत्रता में वृद्धि करती है। प्रेम में कोई रिक्तता रह ही नहीं सकती। इसके व्यापक अर्थ में व्यक्ति अपनी निर्धनता के प्रति भलीभांति जागरूक हो जाता है तथा आत्म अभिव्यक्ति एवं विनम्रता से ईश्वर के अत्यन्त निकट आ जाता है।

"मैं इतना अधिक प्यार करना चाहती हूं कि प्रेम स्वयं ही मेरा अंग हो जाय तथा मैं भी उसके तेज से प्रेम मय हो जाऊं। प्रेम व्यक्ति को विशाल तथा घृणा से उसे सकुचित, कुरुप तथा निकृष्ट बना देती है। यदि प्रेम को प्राप्त करने के बजाय प्रदान करने की ऊंचाई पर आसीन कर दिया जाय तब यह कभी धोखा नहीं दे सकता। एक महान् हृदय में ही विशाल प्रेम हो सकता है।"

मृणालिनी एक अत्यन्त ही भावात्मक महिला है। यह उसकी शक्ति भी है और साथ साथ उसकी निर्बलता भी। अत्यधिक भावात्मकता उसके ध्येयों को ऊंचा रखती है। इससे वह अपने को अत्यन्त ऊंचे तथा प्रेरक प्रयासों में लगाती है। परन्तु उसकी अत्यधिक भावात्मकता उसे बिना वजह बहुत दुखी बना देती है। इससे वह उन छोटी बातों के लिए भी दुखी हो जाती है जिसकी अन्य लोग बिल्कुल परवाह नहीं करते। प्रेम एवं नृत्य से अधिक उसे कुछ भी पसन्द नहीं।

उसके जीवन के यह दो आवश्यक अंग है। ईश्वर और मानव का प्रेम उसे जीवित रखता है तथा नृत्य उसे आध्यात्मिक आनन्द एवं आन्तरिक शक्ति प्रदान करता है।

मृणालिनी को नृत्य करते देखकर लोग उसकी मोहक लालित्य एवं व्याख्यात्मक कला से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। उसकी कला और भंगिमा में दैवी चमत्कार रहता है। उसमें अत्यन्त बौद्धिक जागरूकता है और वह स्वतः एक कटु आलोचक भी है। इसी ारण उसका नृत्य दोषहीन रहता है। उसकी प्रतिभा अद्भुत है। त्येक प्रदर्शन में उसकी बुद्धिमत्ता झलकती है। जहां भी यह नाचती दर्शकों को बड़ा प्रभावित करती है।

रफी अहमद किदवई

उन्हीं लोगों को जनता याद करती है जो मौका पाने पर जोरदार कदम कर दिखाते हैं। रफी साहब उन मुसलमान नेताओं में से थे जिन्हें ज्यादातर मानने वाले हिन्दू थे। उनके लिए हिन्दू और मुसलमानों में कोई भेद कभी था ही नहीं। अपने मुखालिफों की मदद करने में वह माहिर थे और उनके दोस्त तो उन पर हमेशा ही भरोसा करते थे और हर तरह की मदद लेते थे। वह दूसरों की सहायता करना अपना मजहब समझते थे। उनके मरने के बाद जवाहर लाल नेहरू उनके घर मसौली गांव में गए और उनका टूटा फूटा घर देखकर उन्होंने कहा था कि रफी साहब हमेशा दूसरों के मकान बनवाने में लगे रहते थे उन्हें अपना मकान बनवाने की कहां फुरसत !

उनके बारे में बहुत सी दिलचस्प बातें हैं जो उनके बड़प्पन पर रोशनी डालती हैं। रफी साहब पैसा जमा करने में बड़े उस्ताद थे। वह अपने मुखालिफों से भी खूब रुपया वसूल करते थे और दोस्त तो उनको इंकार करते ही न थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि वह पैसे को अपने ऊपर कभी खर्च नहीं करते थे। जो कांग्रेस के नेता गण रफी साहब के साथ थे उनमें से काफी लोगों को हमेशा पैसे की जरूरत रहती थी। रफी साहब ने इन लोगों की तनख्वाहें बांध रक्खी थी। सुना गया है कि उनकी बीबी ने नेहरू को, उनके मरने के बाद मसौली में एक कलम दी थी जिससे वह लिखते थे और एक सूची दी जिसमें उन लोगों के नाम थे जिन्हें हर महीने रफी साहब पैसा भेजते थे। उनकी बीबी ने उन सबको पैसा देने की बात नेहरू से कही थी और वह

सुनकर जरा मुस्कराए थे। नेहरू जानते थे कि वह काम तो रफी साहब ही कर सकते थे और अब उस मामले को उठाना उचित न होगा क्योंकि जो पैसा पाते थे उन्हें यह जानकर उलझन होगी कि उनका 'भेद' खुल गया।

रफी साहब के घर जो जाता था और कुछ मांगता था तो वह खाली हाथ शायद ही कभी लौटता था। वह सबकी मदद करते थे। उनका घर धर्मशाला था और लोग वहां जाकर आराम से टिक जाते थे। उनका घर एक तरह का होटल था। १० या १५ आदमी उनके मकान पर रोज खाना खाते थे। रफी साहब बड़े तिकड़मी समझे जाते थे मगर वह अपने लिए कुछ नहीं करते थे। दूसरों की मदद करते थे। मुखालिफ लोग उनसे बहुत घबराते थे। रफी साहब किस मौके पर क्या करेंगे यह कहना उनके बारे में बड़ा मुश्किल था। वह ज्यादातर टेलीफून का इस्तेमाल करते थे, काम फुरती से निपटाते थे और उनकी मेज पर कागजों और फाइलों का गट्ठर कभी नहीं देखा गया। वह 'रेड टेपिजम' के जाल में कभी नहीं फंसते थे। जैसे जल्दी काम होता था वही तरीका अख्तियार करते थे। वह अपने राजनैतिक मुखालिफों को भी पैसे से मदद कर देते थे। एक कम्युनिस्ट साप्ताहिक चलाने के लिए उन्होंने काफी दिन तक पैसा दिया था। सोशलिस्टों से भी उनके हमेशा अच्छे सम्बन्ध रहते थे। रफी साहब कांग्रेस में 'शरारत' करने के लिए मशहूर थे। इसमें उन्हें बड़ा मजा आता था मगर कभी कभी उनके मुखालिफ और साथी इससे परेशान हो जाते थे। इस बारे में एक बार कुछ लोगों ने जवाहर लाल जी से शिकायत की और कहा कि रफी साहब को ऐसा नहीं करना चाहिए। जवाहर लाल जी हंस पड़े और बोले, "अरे भाई, तुम्हारी बात ठीक है मगर तुम्हें मालूम होना चाहिए कि रफी इन हरकतों से बाज नहीं आ सकते। यह उनकी जिन्दगी का एक हिस्सा है। उनकी इस कमजोरी को हमको बरदाश्त करना चाहिए।"

आचार्य कृपलानी ने मुझे एक दिन एक बड़ा दिलचस्प किस्सा सुनाया। वह जवाहर लाल नेहरू के राजनैतिक विरोधी थे परन्तु रफी साहब नेहरू के परम मित्र थे। कृपलानी जी से भी दोस्ती गांठे रहते थे। एक बार जब नेहरू और कृपलानी का मतभेद बहुत बढ गया तो रफी साहब ने बम्बई में एक मीटिंग में कृपलानी जी से कहा कि वह उनसे मिलना चाहते हैं। उन्होंने उत्तर दिया, "अरे रफी मियां, तुम जवाहर से मिलो, मेरे पीछे क्यों पड़ते हो" यह कह कर कृपलानी जी ने रफी साहब को टालना चाहा परन्तु वह कब मानने वाले थे। और उन्होंने कहा, "अच्छा मैं टेलीफून करके घर पर आऊंगा। कृपलानी जी ने फौरन जवाब दिया, "क्या में जवाहर लाल नेहरू हूं जिनके पीछे पीछे सारी चीजें चलती हैं। मेरे घर, बम्बई में टेलीफून कहां से आया ?"

यह सुनकर रफी साहब चुप हो गए और मीटिंग छोड़कर फौरन टेलीफून कम्पनी को आचार्य कृपलानी के घर फोन लगाने का आदेश दिया। उस समय वह दिल्ली की सरकार में मंत्री थे। जब आचार्य कृपलानी घर पहुंचे तो उनके घर फोन लगा हुआ था। रफी साहब ने कृपलानी को टेलीफोन पर बुलाकर कहा, "दादा, अब बताइए कि किस वक्त आऊं।" उन्हें आने का समय दिया गया। इस बात की चरचा करते हुए मुझसे कृपलानी जी ने कहा, "भला तुम्ही बताओ ऐसे आदमियों से कोई कैसे जान छुड़ा सकता है ?"

उत्तर प्रदेश की राजनीति में पंडित कमलापति त्रिपाठी, पंडित पंत के साथ थे। रफी साहब अक्सर पन्त जी की काट करते थे और उनके मुखालिफ समझे जाते थे। कमलापति जी रफी साहब के साथ नहीं थे और डट कर उनकी मुखालफत करते थे। कमलापति जी के बड़े लड़के को टेलीफून की बड़ी जरूरत थी। वह महीनों तक कोशिश करता रहा परन्तु काम न हुआ। वह एक दिन दिल्ली में रफी साहब से मिला। उसने अपना परिचय दिया और कहा कि उसे

फोन की बहुत जरूरत है । रफी साहब ने सुन लिया और लड़का वापस चला गया । जब वह बनारस पहुंचा तो उसे मालूम हुआ कि उसे टेलीफून मिल गया है । मुखालिफ के लड़के के साथ रफी साहब ने ऐसी शराफत बरती । कमलापति जी ने यह क़िस्सा सुनाते हुए कहा, "भाई, रफी साहब का मुकाबला करना आसान नहीं । वह इन बातों में जोरदार आदमी थे।"

रफी साहब का जन्म १८ फरवरी १८९६ में मसौली में हुआ था। वह एक जमींदार खानदान के थे । उनके पिता इम्तियाज अली एक सरकारी मुलाजिम थे । एक बार एक अंग्रेज अफसर ने उन्हें बुलाकर डांटा और कहा कि उनके लड़के बेकाबू हो रहे हैं । लेकिन उन्होंने अपने लड़कों के मामले में कोई दखल नहीं दिया । रफी साहब के चाचा बाराबंकी में एक वकील थे और उन्होंने उनको पढाया था और रफी साहब ने उन्ही से राजनैतिक हथकंडे भी सीखे थे। वह अपने चाचा के साथ, लखनऊ में हुए कांग्रेस अधिवेशन में शामिल हुए थे। उन्होंने एम० ए० ओ० कालेज, अलीगढ़ में शिक्षा पाई थी और वहां वे बड़े जबरदस्त देश भक्त समझे जाते थे । वहां के उपकुलपति ने उनका नाम बागियों की लिस्ट में रखा था । बड़ी मुश्किल से उन्होंने बी० ए० पास किया । उसके बाद 'लॉ' पढ़ना चाहते थे मगर न पढ़ सके, क्योंकि वह सत्याग्रह के काम में लग गए । उनके भाई शफी ने सरकारी नौकरी छोड़ दी और सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल हुए और गिरफ्तार हो गए । रफी साहब ने बाराबंकी में इतना जोरदार काम किया था कि कांग्रेस नेता उन्हें जान गए । जब १९२२ में वह छूटे तो पंडित मोतीलाल नेहरू ने उन्हें अपना सेक्रेटरी बना लिया । उस दिन से उनका सम्बन्ध नेहरू परिवार से शुरू हुआ और आखिरी दिन तक वे जवाहर लाल नेहरू के सच्चे दोस्त रहे।

रफी साहब को मोटर बदलने और मोटर तेज चलवाने का बड़ा शौक था । जब उनका ड्राइवर मोटर ६० मील से कम की रफ्तार

पर चलाता था तो वे उससे कहते थे कि इतनी धीरे धीरे चलायेगा तो वह गाड़ी से उतर जायेंगे। एक बार गाजियाबाद के पास उनकी मोटर तेज चलने के कारण दुर्घटना ग्रस्त हुई। दिल्ली से गाधी जी उन्हें गाजियाबाद देखने गए। उस समय रफी साहब यू० पी० में मंत्री थे। रफी साहब से मिलने पर बापू ने कहा, "रफी, तेरी मोटर इतनी तेज न चले तो तू सोचता है कि यू० पी० में कोई काम नही होगा।" रफी ने कहा, "बापू, यह बुरी ग्रादत पड गई छूटती नहीं।"

रफी साहब ने गृह मंत्री की हैसियत से यू० पी० में ग्रौर खाद्य मंत्री की हैसियत से दिल्ली सरकार में बड़े जोरदार काम किए जिनके लिए ग्रभी तक याद किए जाते हैं। वह एक बड़े जोरदार ग्रादमी थे, काम करना ग्रौर कराना जानते थे। वह एक बड़े योग्य शासक थे। जब कश्मीर में गड़बड़ी बढ़ रही थी ग्रौर शेख ग्रब्दुल्ला को सरकार गिरफ्तार करने में हिचकती थी तो यह कहा जाता है कि उन्होंने ग्रब्दुल्ला को गिरफ्तार करने का इसरार किया ग्रौर रातो रात गिरफ्तार करवाया।

रफी साहब बड़े विद्वान मनुष्य नहीं थे। उनके हाथ में शायद ही कभी किसी ने किताब देखी हो। पुस्तकालय इत्यादि से उनका कोई सम्बन्ध न था। वह भाषण देने में निपुण नही थे। वह बहुत थोड़ा बोलते थे। उन्होंने सबक किताबों से नहीं सीखे थे। मनुष्य उनके लिए जीता जागता किताब थी। उनकी खास बात यह थी कि वह ठीक मौके पर ठीक काम करना जानते थे। जब वह कामयाब होते थे तो बौखलाते नहीं थे। डटकर मुश्किलों ग्रौर मुखालिफों का मुकाबला करते थे। वह सच्चे देशभक्त थे ग्रौर जनता की सेवा करना उनका मजहब था।

सुमित्रानन्दन पंत

ज्यादातर लोग कवि की कविताओं के बारे में ही जानते हैं और उनके जीवन की घटनाओं और संघर्षों के बारे में नहीं जानते जिनके कारण ही वह बड़ी बड़ी कविताओं को लिख सके । पं० सुमित्रानन्दन पंत एक महान् कवि तो हैं ही, पर सबसे बड़ी बात यह है कि वह एक बड़े शानदार, समझदार और नेक इन्सान भी हैं । उनसे मिलने पर लोगों को खुशी होती है और उनकी शराफत का पूरा अन्दाजा होता है । मैं इस लेख में उनकी कविताओं और पुस्तकों की चर्चा नहीं करूंगा क्योंकि लोगों ने उन्हें पढ़ा है और उनकी योग्यता, गहराई और प्रतिभा का अन्दाजा किया है । इस लेख में पन्त जी के बारे में कुछ ऐसी बातें बताऊंगा जो उनके जीवन पर काफी रोशनी डालती हैं ।

करीब तीस साल हुए मैंने सबसे पहिले पन्त जी को इलाहाबाद में स्वर्गीय प्रोफेसर भवानी शंकर के घर देखा था । भवानी शंकर जी, पं० अमरनाथ झा के बड़े भक्त थे और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी पढ़ाते थे । पंत जी भी झा साहब को अच्छी तरह जानते थे और उनको बहुत मानते थे । यद्यपि वे हिन्दी के कवि हैं, परन्तु उन्होंने अंग्रेजी कवियों की रचनाओं का भली भांति अध्ययन किया है । पंत जी में एक माने में 'अंग्रेज़ियत' की काफी जबरदस्त छाप है और इसी

कारण बहुत से लोग, जिनका हिन्दी या हिन्दी वालों से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह भी पन्त जी को पसन्द करते हैं और उनके तर्जो तरीकों से प्रभावित हैं और उनका बड़ा आदर करते है। उनकी बात चीत का तरीका, उनकी पोशाक, उनका रहन-सहन हमेशा 'माडर्न' रहा है।

पन्त जी को जब भवानी शंकर जी ने बताया कि मै (लेखक) 'उस' शहर का रहने वाला हूं तो पन्त जी बड़े खुश होकर बोले, "अच्छा, अच्छा! आप 'वहा' के रहने वाले हैं। वहा तो 'वह' भी रहते हैं। वे आक्सफोर्ड के बी० ए० हैं। अच्छे कवि भी हैं। बहुत सी किताबें लिखी हैं। बहुत अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं। बड़े सज्जन पुरुष हैं।"

ज्यों ज्यों पन्त जी उन महाशय की तारीफ के पुल बांधे जा रहे थे, उतनी ही जोर से हमें हंसी आती जा रही थी। भवानी शकर जी बोले, "पुरुषोत्तम, क्या बात है, क्या पत जी की बात सही नही है?"

हम तो इण्टरमीडिएट में पढ़ते थे। पत जी इतने बड़े आदमी की बात को भरे मजमे में गलत कैसे बतायें। मगर यह कैसे कहें कि वह सही है क्योंकि जिन हजरत की वह घोर प्रशंसा कर रहे थे वह मेरे सहपाठी थे! सोलह आने चरकट थे। इन्टरमीडिएट पास न कर पाये थे। दूसरों का पैसा लेकर वापस न करते थे। दोस्तों की किताबें लाकर बेच लेना उनके बायें हाथ का खेल था। झूठ बोलने में माहिर थे। कवि थे नही। दूसरों की कवितायें पढ़ कर बहुत अच्छी तरह सुनाते थे और उन्हें अपनी बताते थे। किताब उस समय तक एक भी न लिखी थी। नम्बरी चार सौ बीस थे।

भवानी शंकर जी ने फिर कहा, "हिचकते क्यों हो। सच बात बताते क्यो नही?" जब उन्होंने बहुत इसरार किया तो मैंने बताया कि वह साहब क्या है। पन्त जी एक प्रकार से हैरत में हांफने लगे। उनकी आंखों में ग़म था। उनके चेहरे पर दुःख की झलक। उन्होंने थरथराते हुए होठों से कहा, "भवानी शंकर जी, क्या लोग इतना झूठ

बोल सकते हैं ?" भवानी शंकर जी पंत जी को अच्छी तरह जानते थे और बोले "आप को तो कोई भी झांसा दे सकता है।"

उस दिन ही मुझे पन्त जी के भोलेपन और सीधेपन का अन्दाजा हो गया। मैं सोचने लगा कि कवि और कलाकार न जाने किस दुनिया में रहते हैं। पंत जी ऐसे लोगों के दिमाग में मनुष्य का एक दूसरा ही रूप है। वह उसे दूसरे ही पैमाने से नापते हैं।

सालों गुजर गये हम पन्त जी को देखते रहे और उनके बारे में सुनते रहे। अभी करीब तीन चार साल पहिले उनके बारे में एक बात सुनी। उससे थोड़ा ताज्जुब हुआ लेकिन मेरी तबियत बहुत खुश हुई। एक दिन इलाहाबाद में पन्त जी का "साहित्यिक घिराव" हुआ। एक गोष्ठी की गई उसमें पन्त जी की एक पुस्तक पर बात चीत हुई। पन्त जी भी बुलाए गये थे। कई लोगों ने उनकी पुस्तक की कड़ी आलोचना की। "ऐसा मालूम होता था," एक बड़े अफसर जो वहां मौजूद थे, उन्होंने मुझे बताया, "कि कुछ हिन्दी के लेखक उस दिन पन्त जी की 'साहित्यिक मरम्मत' करने के लिए पहिले से ही तुले बैठे थे। जो मन में आया उन्होंने कहा।" अफसर महोदय लौट कर मेरे घर आये और बोले, "आज कुछ हिन्दी वालों ने पन्त जी के साथ बड़ी अशिष्टता का बर्ताव किया।" उन्होंने वहां की सब बातें मुझे बताईं। मैं ने पूछा, "लेकिन पन्त जी ने क्या कहा ?" अफसर महोदय यह कहा मार कर हंसे और बताया "उन्होंने तो आज कुछ लोगों की तबियत साफ कर दी। थोड़ी अपनी बात कही और फिर पूछा, 'अगर कोई आदमी एक बहुत सुन्दर मन्दिर बनाये और कोई आलोचक यह कहे कि, इसमें "बाथ रूम" तो है ही नहीं तो उसका क्या जवाब दिया जाय।' पन्त जी के इस उत्तर से आलोचकों की दिमागी खिड़की तो बंद ही गयी होगी, चाहे मुंह से वह कुछ भी बक बक करते रहे हों।"

पन्त जी ने अपनी पहली कविता १९१८ ई० में लिखी थी और वह अल्मोड़ा के एक अखबार में छपी थी। १९१९ ई० में इन्होंर

सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद में वह विद्यार्थी थे और हिन्दू बोडिंग हाउस में पढ़ते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी जब वह इन्टरमीडिएट के विद्यार्थी थे। एक बार गाधी जी ने विद्यार्थियों से पढ़ाई छोड़ देने की अपील की थी। इलाहाबाद के एक जलसे में उन लोगों ने हाथ उठाये जो छोड़ने को तैयार थे। पन्त जी का हाथ उनके भाई देवीदत्त पन्त ने पीछे से पकड़ कर उठा दिया और उन्होंने अपना खुद नही उठाया।

पन्त जी ने विद्यार्थी जीवन में लड़की का पार्ट एक ड्रामा में किया था। वह ड्रामा इत्यादि में बहुत दिलचस्पी रखते थे। उन लोगों को जिनको पन्त जी के बारे में कुछ जानकारी नही है उनके बालों को देखकर उन्हें स्त्री समझते है। एक बार तो किसी ने उन्हें स्त्री समझ कर एक बड़ा लम्बा प्रेम पत्र लिख डाला। हाल में ही उनको एक साहब ने पत्र लिखा था और उन्हें स्त्री मान कर सम्बोधित किया था।

पन्त जी के बचपन के दिन कौसानी में गुजरे थे। उनके पिता का नाम पं० गंगादत्त पन्त था और मां का नाम सरस्वती। पत जी को जन्म देने के छः घण्टे बाद ही उनकी मां का देहान्त हो गया। जब पन्त जी पैदा हुए उसी समय उनकी मां बेहोश हो गई थी। पन्त जी के पिता कौसानी टी इस्टेट में असिस्टेन्ट मैनेजर और अकाउन्टेन्ट थे। वह चाहते थे कि पन्त जी डाक्टर हों। उन्हें विज्ञान पढ़ाया मगर जब वह कालेज गये तो संस्कृत पढ़ी। वह धीरे धीरे कविता लिखने लगे और जब उनका नाम हुआ तो उनके पिता को बहुत खुशी हुई। पन्त जी की दुनिया उनके पिता के देहान्त के बाद बदल गई। वह बड़े गमजदा रहते थे और बहुत दिनों तक वह उनकी याद में बेजार रहे। उनके घर में उनके पिता का एक बड़ा सुन्दर चित्र है। कई महीनों तक तो उन्होंने उस चित्र को ढक कर रक्खा क्योंकि वह जब चित्र की ओर देखते थे तो पिता की याद आती थी और उनका जी भर आता था। कुछ ही साल हुए उन्होंने अब उसके ऊपर से परदा उठा दिया है।

बचपन में कौसानी में साधू सन्तों की पन्त जी बहुत संगत करते थे। उनका पन्त जी के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा क्योंकि उन लोगों के विचार ऊंचे थे और वह जीवन में सत्य की खोज में लगे रहते थे। जब पन्त जी अल्मोड़ा में थे तो स्वामी सत्यदेव का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह हिन्दी का प्रचार करते थे और देशभक्ती के पुरजोश गाने सुनाते थे। उस जमाने में अल्मोड़ा में हिन्दी की अनेक पुस्तकें प्राप्त थी और पन्त जी उन्हें खूब पढ़ते थे। उनके बड़े भाई मेघदूत और शकुन्तला का बड़ी अच्छी तरह पाठ करते थे और पन्त जी उनको सुनकर मुग्ध हो जाते थे। कौसानी के वातावरण ने उन्हें अच्छा कवि बनने में बड़ी मदद की। वहां ही वह जान गये कि उन्हें कविता लिखने की योग्यता है। एक बार उन्होंने एक खत अपनी बहिन को कविता में लिखा उसकी सबने बहुत तारीफ की। उससे पन्त जी की बड़ी हिम्मत बढ़ी।

जब पन्त जी हाईस्कूल की परीक्षा देने बनारस गये उस समय वह नौ महीने वहाँ ठहरे और टैगोर को देखा। उनके सम्मान को देखकर उनको अन्दाजा हुआ कि कवि की भी इतनी इज्जत हो सकती है। पन्त जी ने बनारस में खूब संस्कृति पढ़ी। उस समय उनकी उमर १८ साल की थी। जब वह बनारस से लौट कर आये तो उन्होंने अपनी कविता "स्वप्न" हिन्दू हास्टल, इलाहाबाद में पढ़ी। लोगों ने उसी से अन्दाजा कर लिया कि वह एक बड़े ऊंचे दर्जे के कवि है। कुछ दिनों बाद उन्होंने अपनी दूसरी कविता, 'छाया' जंन हास्टल, इलाहाबाद में सुनाई। उस जलसे में उस समय के बड़े कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी मौजूद थे। उन्होंने अपने गले का हार उतारकर उसी जलसे में पन्त जी के गले में डाल दिया और बड़े खुश हुए। बनारस में 'हरिऔध' ने कहा, "लोग मुझे कवि सम्राट कहते हैं, लेकिन कवि सम्राट तो सुमित्रानन्दन है।" उस समय पन्त जी कुल १६ साल के थे।

उनकी पुस्तक 'पल्लव' १६२६ में छपी और उनका बड़ा नाम हुआ।

इसके छपने से पन्त जी बड़े खुश थे। जब वह पुस्तक लेकर खुशी खुशी और बड़ी उमंगों के साथ जून १९२६ में अल्मोड़ा पहुंचे तो उन्हें मालूम हुआ कि सारी घर की जायदाद निकल गई है और उनके परिवार के ऊपर एक बड़ी भारी कयामत आ गई है। उन्हें पूरा हाल भी न मालूम था। उनसे सिर्फ कागज पर दस्तखत करा लिये गए थे। वहां से वह बड़े दुखी होकर नैनीताल लौटे। बदनसीबी उनका वहां भी पीछा कर रही थी। वहां पहुंचते ही उन्होंने देखा कि उनकी बहिन बेहद बीमार है। उस जमाने में पन्त जी की मुसीबतों और उनकी भावनाओं का अन्दाजा करना कठिन था। कुछ दिनों के बाद वह इलाहाबाद आये और किताबों का अनुवाद करके रोजी कमाना शुरू किया। जब पन्त जी मुझे अपने जीवन के संघर्षों और मुसीबतों की कहानी सुना रहे थे उनका गला भर आया। उन दुखदाई दिनों की याद उन्हें सताने लगी।

पन्त जी की करीब तीस पुस्तकें छप चुकी हैं। उनकी कुछ पुस्तकों के अनुवाद रूसी, जर्मनी और जापान की भाषाओं में हुए हैं। पन्त जी, जैसा मैं पहले कह चुका हूं, टैगोर की रचनाओं से बड़े प्रभावित हुए थे। वह टैगोर का बहुत सम्मान करते थे। वह उनको दुनिया का सबसे बड़ा गीतकार समझते हैं। उनका विचार है कि गुरुदेव का हर गीत एक बड़े पैमाने का है। उन्होंने एक बार गुरुदेव से कहा कि उनकी राय 'फ्रायड 'और 'मार्कसिज्म' के बारे में क्या है तो टैगोर ने मजाक में कहा, "यह तो आप का सिरदर्द है। अगर मैं अपने विचार इन मामलात पर जाहिर करूं तो लोग मेरे मरने के बाद मेरी मृत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए सभायें भी नहीं करेंगे।" शायद उनके विचार फ्रायड और मार्क्स से भी बढ़ कर थे लेकिन उस युग में उन विचारों के लिए कोई स्थान न था और लोग उन्हें समझने को तैयार न थे।

. . .

मैंने पन्त जी से सवाल किया कि उन्होंने शादी क्यों नहीं की

जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि मैं बड़ी पुरानी बात पूछ रहा हूं। उन्होंने बताया कि जब शादी करने के दिन थे तो एक न एक मुसीबत का तूफान उनके सर पर बरपा होता रहा। जब उससे कुछ छुटकारा हुआ तो सवाल ग्रामदनी का था। शादी करने के माने यह थे कि ग्रार्थिक जिम्मेदारिया बढ़ाई जाय जो मुमकिन न था। दिन निकलते गये, शादी की बात पीछे पड़ती गई।

पंत जी जीवन में मित्रता ग्रौर प्रेम को बड़ा स्थान देते हैं। धन की तृष्णा उनमें नही है। उनका विचार है कि ग्राज के युग में सच्ची मित्रता ग्रौर सच्चे प्रेम का करीब करीब खात्मा हो गया है। "यह सही है कि एक तरह का प्रेम ग्रौर मित्रता ग्राजकल भी है मगर वह मेरे विचारों के ग्रनुसार नहीं। मैंने इस बात की चर्चा लोकायतन में की है," पन्त जी ने बताया। मैं ने उनसे पूछा कि लोकायतन के बारे में वह क्या सोचते है तो उन्होंने कहा, "मुझे लगता है कि इस ग्रन्थ में मुझे वह उपलब्धि सुलभ हो सकी है जिसकी मैं खोज में था। मेरा यह काव्य उस ग्रन्तरदृष्टि का बोध देता है जो ग्राज के विश्व के सांस्कृतिक ग्रौर सामाजिक विकास को नई दिशा देने की क्षमता रखता है। यह मेरी ही नहीं पर यह मेरे उन पाठकों की भी धारणा है जिन्होंने इसका ध्यानपूर्वक ग्रौर तटस्थ भाव से ग्रध्ययन तथा मनन किया है।"

पन्त जी ७२ वर्ष के हैं ग्रौर उनका काफी ग्रच्छा स्वास्थ्य है। जीवन में मुसीबत के थपेड़े खाना, परेशानियों के तूफान में इधर उधर भटकना, निराशा के दरिया से बिला निराश हुए निकल ग्राना, किसी के लिए भी बड़ा भारी सबक ग्रौर तजुरबा हो सकता है। पन्त जी को यह सबक ग्रौर ग्रनुभव काफी मात्रा में मिला है। इसके कारण उन्होंने जीवन की समस्याग्रों को बहुत गहराई से सोचा ग्रौर काफी समझा है। पन्त जी की ग्रपूर्व बुद्धि उनका ग्रभी तक पूरे तौर से साथ दे रही है [illegible] पर किसी को भी फक्र हो सकता है।

सम्पूर्णानन्द

बहुत से लोग ऊंचे पदों को छोड़ने में बड़े दुखी होते हैं और अपने सिद्धान्तों का हनन करके बड़ी बड़ी जगहों पर चिपके रहते हैं। दुनिया में कुछ थोड़े ही लोग ऐसे हैं जो अपने सिद्धान्तों पर अटल रहते हैं और पद या सत्ता की परवाह नहीं करते। सम्पूर्णानन्द ने उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री पद की एक उसूल पर बाजी लगा दी थी। उनका कहना था कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष उसी को होना चाहिए जो प्रान्त के मुख्य मंत्री के साथ मिल जुल कर एकता से काम कर सके। वह विश्वास करते थे कि यदि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष मुख्य मंत्री के विरुद्ध है तो मुख्य मंत्री काम नहीं कर सकता। उन्होंने इस बात का एलान किया कि यदि श्री चंद्रभानु गुप्त, जिनका उनसे मतभेद था, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुन लिए गए तो वे मुख्य मंत्री के पद से इस्तीफा दे देंगे और उन्होंने ऐसा ही किया।

उनके अनुयायियों ने कहा, "बाबू जी ने हम सब की राजनैतिक हत्या करा दी।" सम्पूर्णानन्द जी का कहना था कि सिद्धान्तों पर डटने के लिए उन्हें ऐसा करना पड़ा और सिद्धान्त उन्हें सब से ज्यादा प्रिय हैं।

सम्पूर्णानन्द जी एक बड़े विद्वान पुरुष थे। उन्होंने विज्ञान में बी० ए० पास किया और उसके बाद दर्शन शास्त्र का डटकर अध्ययन

किया। उन्होंने करीब २५ पुस्तकें लिखी थी। उन्हें किताबों से बड़ा प्रेम था और उनकी पढ़ने लिखने में बड़ी रुचि थी। दरबार बाज़ी उन्हें बिल्कुल नापसन्द थी। वह समय नष्ट करने वालों को पसन्द नहीं करते थे। जब वह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे तो वह कम से कम लोगों से मुलाकात करते थे और जल्द से जल्द जान छुड़ाते थे। उन्हें ज्यादा बातचीत करने का शौक नहीं था। यदि कोई उनके पास जाकर जम ही जाता था तो कोई किताब उठाकर पढ़ने लगते थे। उनके इस वर्ताव से लोग खिन्न होते थे परन्तु वह अपना समय नष्ट नहीं करना चाहते थे।

सम्पूर्णानन्द जी को संगीत से बहुत प्रेम था। एक दिन मैं ने उनसे शिकायत की कि इलाहाबाद में करीब करीब हर समय कुछ अनुचित रिकार्डस् बजाए जाते हैं और उनसे जनता को तकलीफ होती है। उन्होंने बताया कि एक मर्तबा उन्होंने एक शादी के मौके पर गम के गाने सुने और हैरत में रह गए। वह बोले, "मैं लोगों के घरों का सांस्कृतिक स्तर, जैसे उनके घर पर रिकार्ड बजाए जाते हैं, उससे अनुमानता हूं।"

एक मर्तबा मैंने सम्पूर्णानन्द जी को बड़े गुस्से और ग़म में देखा। वाक्या है इलाहाबाद आफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल का। सम्पूर्णानन्द जी वहां एक जलसे की सदारत करने गए थे। समारोह में एक आफिसर ने गीता की बुरे तरीके से खिल्ली उड़ाई और बड़ी अनुचित बातें कहीं। कमिश्नर साहब, जो वहां के प्रधानाचार्य थे, इस नक़ल बाज़ी (पैरोडी) को सुन चुके थे और उन्होंने उसे सुनाने की आज्ञा दी थी। मैं इस 'पैरोडी' को अधिक देर तक सुन न सका और उसका विरोध करने के लिए खड़ा हुआ। सम्पूर्णानन्द जी ने तुरन्त बड़ी नम्रता से कहा, "भाई, जरा रुको मुझे सुन लेने दो।" फिर एक मिनिट के बाद वह अफसरों के ऊपर बम की तरह टूटे और उन सबको बुरी तरह से डांटा। उन्होंने कहा, "यदि यहां कुछ विदेशी लोग होते तो हमारे

बारे में क्या सोचते ? क्या हम अपने धार्मिक ग्रन्थों का इस तरह अनादर कर सकते हैं ? क्या हमें ऐसी बेहूदा बातें कहनी चाहिए ? आप जिलों में जाकर काम सम्हालेंगे और आप लोगों का यह सास्कृतिक स्तर है ? मैं तो आप लोगों की हरकत से हैरान हूं।"

जब सम्पूर्णानन्द जी अपनी बात कह चुके और घर वापस जा रहे थे तो मैं ने पूछा, "मुझे बड़ा ताज्जुब है कि आप इतनी देर तक यह सब सुनते रहे।" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं यह देखना चाहता था कि यह लोग कितना नीचे जा सकते हैं।" समारोह में ही कमिश्नर साहब ने माफी मांगी और इस मामले की चर्चा यू० पी० विधान सभा में भी की गई थी। सम्पूर्णानन्द जी ने कोई सफाई नहीं दी और सदस्यों के सामने खेद प्रकट किया।

सम्पूर्णानन्द जी हर मामले को एक ऊंचे स्तर से देखते थे। एक बार किसी ने उन्हें जहर देने की कोशिश की पर उन्होंने उसे माफ कर दिया। एक बार उन्होंने उस आदमी को क्षमा कर दिया जिसने उनकी बदनामी की थी और जिसके खिलाफ उन्होंने मुकदमा जीता था। उनके पुत्र श्री सर्वदानन्द का कहना है कि जब सम्पूर्णानन्द जी की पत्नी लखनऊ में मर रही थी तो उनका रसोइया कुछ कीमती चीजें लेकर भागना चाहता था परन्तु चपरासियों ने उसको पकड़ लिया और उसकी खूब मरम्मत की। ज्योंही सम्पूर्णानन्द जी को पता चला उन्होंने चपरासियों को डाटा और उसको छुड़वा दिया।

सम्पूर्णानन्द जी लल्लो चप्पो पसन्द नहीं करते थे। खरी बात करने में माहिर थे। सन् १६४१ में उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन के खिलाफ कई लेख लिखे थे। ज्योतिष और कई विषयों पर उन्होंने जवाहर लाल जी के विचारों का विरोध किया था। देश के बड़े बड़े नेता उनकी सच्चाई और योग्यता का लोहा मानते थे और उनका सम्मान करते थे। जीवन में उन्होंने सच्चाई का रास्ता अपनाया और उन्हें ख्याति मिली। वह रूखे व्यक्ति मालूम होते

किया। उन्होंने करीब २५ पुस्तकें लिखी थीं। उन्हें किताबों से बड़ा प्रेम था और उनकी पढ़ने लिखने में बड़ी रुचि थी। दरबार बाज़ी उन्हें बिल्कुल नापसन्द थी। वह समय नष्ट करने वालों को पसन्द नहीं करते थे। जब वह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे तो वह कम से कम लोगों से मुलाकात करते थे और जल्द से जल्द जान छुड़ाते थे। उन्हें ज्यादा बातचीत करने का शौक नहीं था। यदि कोई उनके पास जाकर जम ही जाता था तो कोई किताब उठाकर पढ़ने लगते थे। उनके इस वर्ताव से लोग खिन्न होते थे परन्तु वह अपना समय नष्ट नहीं करना चाहते थे।

सम्पूर्णानन्द जी को संगीत से बहुत प्रेम था। एक दिन मैं ने उनसे शिकायत की कि इलाहाबाद में करीब करीब हर समय कुछ अनुचित रिकार्डस् बजाए जाते हैं और उनसे जनता को तकलीफ होती है। उन्होंने बताया कि एक मर्तबा उन्होंने एक शादी के मौके पर गम के गाने सुने और हैरत में रह गए। वह बोले, "मैं लोगों के घरों का सांस्कृतिक स्तर, जैसे उनके घर पर रिकार्ड बजाए जाते हैं, उससे अनुमानता हूं।"

एक मर्तबा मैंने सम्पूर्णानन्द जी को बड़े गुस्से और गम में देखा। वाक्या है इलाहाबाद आफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल का। सम्पूर्णानन्द जी वहां एक जलसे की सदारत करने गए थे। समारोह में एक आफिसर ने गीता की बुरे तरीके से खिल्ली उड़ाई और बड़ी अनुचित बातें कहीं। कमिश्नर साहब, जो वहां के प्रधानाचार्य थे, इस नकल बाजी (पैरोडी) को सुन चुके थे और उन्होंने उसे सुनाने की आज्ञा दी थी। में इस 'पैरोडी' को अधिक देर तक सुन न सका और उसका विरोध [illegible] से
करने के लिए खड़ा हुआ। [illegible]
कहा, "भाई, जरा रुको [illegible]
वह अफसरों के [illegible]
डांटा। [illegible]

बारे में क्या सोचते ? क्या हम अपने धार्मिक ग्रन्थों का इस तरह अनादर कर सकते हैं ? क्या हमें ऐसी बेहूदा बातें कहनी चाहिए ? आप जिलों में जाकर काम सम्हालेंगे और आप लोगो का यह सास्कृतिक स्तर है ? मैं तो आप लोगों की हरकत से हैरान हू ।"

जब सम्पूर्णानन्द जी अपनी बात कह चुके और घर वापस जा रहे थे तो मैं ने पूछा, "मुझे बड़ा ताज्जुब है कि आप इतनी देर तक यह सब सुनते रहे।" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं यह देखना चाहता था कि यह लोग कितना नीचे जा सकते हैं ।" समारोह में ही कमिश्नर साहब ने माफी मांगी और इस मामले की चर्चा यू० पी० विधान सभा में भी की गई थी । सम्पूर्णानन्द जी ने कोई सफाई नही दी और सदस्यों के सामने खेद प्रकट किया ।

सम्पूर्णानन्द जी हर मामले को एक ऊंचे स्तर से देखते थे । एक बार किसी ने उन्हें जहर देने की कोशिश की पर उन्होंने उसे माफ कर दिया । एक बार उन्होने उस आदमी को क्षमा कर दिया जिसने उनकी बदनामी की थी और जिसके खिलाफ उन्होंने मुकदमा जीता था । उनके पुत्र श्री सर्वदानन्द का कहना है कि जब सम्पूर्णानन्द जी की पत्नी लखनऊ में मर रही थी तो उनका रसोइया कुछ कीमती चीजें लेकर भागना चाहता था परन्तु चपरासियों ने उसको पकड़ लिया और उसकी खूब मरम्मत की । ज्योंही सम्पूर्णानन्द जी को पता चला उन्होंने चपरासियों को डांटा और उसको छुड़वा दिया ।

सम्पूर्णानन्द जी लल्लो चप्पो पसन्द नही करते थे । खरी बात करने में माहिर थे । सन् १६४१ में उन्होने गाधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन के खिलाफ कई लेख लिखे थे । ज्योतिष और कई विषयों पर उन्होंने जवाहर लाल जी के विचारों का विरोध किया था । देश के बड़े बड़े नेता उनकी सच्चाई और योग्यता का लोहा मानते थे और उनका सम्मान करते थे । जीवन में उन्होंने सच्चाई का रास्ता अपनाया और उन्हें ख्याति मिली । वह रूखे व्यक्ति मालूम होते

थे परन्तु उनके चित में बड़ी दया थी। वह समय की पाबन्दी करना पसन्द करते थे और जो काम करते थे उसमें बड़ी लगन होती थी।

सम्पूर्णानन्द जी बात को बहुत जल्दी समझ लेते थे और उनमें जल्द फैसला देने की क्षमता थी। उन्होंने ५ बार जेल काटी और करीब ६० महीने जेल में रहे। सम्पूर्णानन्द जी बड़े धार्मिक पुरुष थे। सन् १९१३ में वह सनातनी थे और उसी साल से उन्होंने मस्तक पर टीका लगाना शुरू किया। जब वह छोटे थे तो उन्हें पारसी मजहब में बड़ी दिलचस्पी थी। उनके भाई परिपूर्णानन्द ने लिखा है, "वह १२ साल की उम्र में पारसी थे, १३, १४ साल की उम्र में वह आर्य समाजी थे और १८ साल की उम्र मे सनातनी थे और अब वह हठयोगी हैं।"

सम्पूर्णानन्द जी किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखते थे। जो उनका विरोध करता था वह उससे भी कोई रंज नहीं रखते थे। उन्होंने एक बार नेहरू के ऊपर लिखी हुई एक पुस्तक की समालोचना की। उस पुस्तक में जवाहर लाल जी को बहुत बुरा भला कहा गया था। न जाने क्यों सम्पूर्णानन्द जी ने इस पुस्तक की प्रशंसा की। मुझे यह बात बहुत बुरी लगी और मैं ने इस समालोचना की एक बड़े अखबार में कटु निन्दा की। जब कुछ दिनों के बाद उनके सामने मुझे विधान परिषद का सदस्य नामजद करने का सवाल उठा तो उन्होंने इस बात पर कोई आपत्ति नहीं की और अपनी अनुमति दी।

सम्पूर्णानन्द जी मुसीबत के सामने सिर नहीं झुकाते थे। वह जीवन की लीला को समझते थे। बहुत दिन हुए उनका जवान लड़का मर गया और वह बदस्तूर अपना रोज का काम करते रहे उससे लोगों को बड़ी हैरत हुई। उनके घर में उनकी तीन बीवियों और कई लोगों की मृत्यु हुई थी परन्तु इन कयामतों ने उन्हें विचलित नहीं किया। उनमें कुछ ऐसी बातें थी जो लोगों को महान और वीर बनाती हैं।

महादेवी वर्मा

एक लड़की की शादी नौ साल की उम्र में हो गई। लडकी होने के कारण बनारस के पडितों ने उसे ऋग वेद पढाने से इकार कर दिया। इलाहाबाद विश्व विद्यालय में भी उसे काफी कठिनाइया झेलनी पड़ी। उस समय के कुलपति डा० गंगानाथ झा लडकियो से बात नही करते थे और कभी तो उनकी ओर देखने से भी इकार करते थे। उस लड़की के परिवार में दो सौ बरस से कोई लडकी पैदा नही हुई थी।

उसके पिता जी देवी से यही रोज प्रार्थना करते थे कि उनके कुल में लडकी जन्म ले। भगवान को उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई और लडकी पैदा होने पर उसका नाम महादेवी रक्खा गया। जीवन का राग गाते गाते, सुख दुख का साझ सवेरा देखते देखते, सालों की खिड़की से गुजरते गुजरते उन्होंने जीवन की काफी मजिल तै कर ली है। यह है भारत की युग निर्मात्री कवियत्री महादेवी वर्मा।

एक दिन मैंने उनसे करीब करीब तीन घटे की एक विशेष भेंट की। मैं ने सब सवाल अंग्रेजी में किए उन्होंने सारे उत्तर हिन्दी में दिए। उन्हें अंग्रेजी से न कोई शिकायत थी, न थी कोई उलझन और उनको हिन्दी सुनने में अच्छा लगता ही है, चाहे सुनने वाले को हिन्दी कम ही आती हो। उससे एक दिन पहले उनका ब्लड प्रेशर बढ़ चुका था परन्तु

जब मैंने उन्हें देखा तो वह बिल्कुल स्वस्थ थीं और ऐसा मालूम होता था जैसे दिन भर का तमतमाया हुआ सूर्य अपनी संध्या की शीतलता से स्वयं ही मुग्ध है। इधर उधर की बातचीत के बाद मैंने सवालों की गोली चलाना शुरू किया और उन्होंने बड़े इतमीनान से हर बात का जवाब दिया। कविवर निराला की बात करते करते उनका जी भर आया और आखों में नमी आ गई। ऐसा मालूम होता था कि उनका शरीर यादों के भूकम्प से डगमगा रहा था। महादेवी जी ने कहा, "वह मुझे बहन मानते थे। रक्षा बंधन के दिन मुझसे राखी बंधाने आते थे। कहीं से एक रुपया मांग कर लाते थे और उस दिन मुझे देते थे। एक बार वह भी रुपया उन्होंने रास्ते में किसी को दे दिया। मेरे घर रिक्शा पर आए और बोले, 'मुझे दो रुपए दे दीजिए'। मैंने पूछा कि ऐसी क्या जरूरत आ गई। वह बोले, 'एक तुम्हें देना है और एक रिक्शा वाले को'। मुझे रुपया देने के लिए मुझसे ही रुपया मांगा। स्वभाव के कितने भोले थे।"

बचपन में ही पढ़ने लिखने में महादेवी जी तेज थीं। उन्हें अंग्रेजों के जमाने में यू० पी० सरकार ने विदेश जाकर पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति देने को कहा। महादेवी जी ने बापू से जाकर इस बारे में राय पूछी। उन्होंने कहा, "बाहर जाकर क्या करेगी। अब देश में सरकार के खिलाफ लड़ाई छिड़ी हुई है। बाहर जाकर क्या पढ़ेगी? हम लोग इग्लैंड हो आए हैं। तू तो किताबें वगैरह यहां ही मिलती हैं। जाकर हिन्दी का प्रचार क्यों नहीं करती?" गाधी जी ने कहा। १९३० में महादेवी जी प्रयाग महिला विद्यापीठ आ गईं। गाधी जी ने कई लड़कियों को सेवाग्राम से इस संस्था में भेजा।

महादेवी जी ने बापू को १९२२ में पहली बार देखा था। वह उनके पास १९२८ में गईं और उनसे इसरार किया कि वह उन्हें अपने साथ रखकर काम कराएं। उन्हें बापू ने समझाया कि जिन लोगों के पास कुछ काम नहीं है, न ज्यादा काम करने की शक्ति है वह दूसरों के पीछे

पीछे घूमते हैं। जो लोग काम करना जानते हैं और काम करने योग्य हैं वह खुद संस्थाएं खोलते हैं और जमकर काम करते हैं। महादेवी जी को यह बात जमी और उन्होंने अपना काम इलाहाबाद में जाकर शुरू कर दिया। आनन्द भवन में उनका आना जाना अकसर होता था। एक दिन वह अपनी पुस्तकों का बस्ता आनन्द भवन के एक कमरे में छोड़ कर चल दीं। जवाहर लाल जी ने बस्ता उठाकर जोर से कहा, "यह कैसा बिगड़ा है?" महादेवी जी सटपटा कर बोलीं, "मेरा!" जवाहर लाल जी ने कहा, "तुम कैसे पढ़ती हो जो अपनी किताबें भी इधर उधर छोड़ती हो! क्या अजीब बात है!"

महादेवी जी जवाहर लाल जी को अपना बड़ा भाई मानती थीं और समय समय पर अपने निजी मामलों में उनकी सलाह लेती थीं। एक दिन दिल्ली में एक कवि सम्मेलन में महादेवी जी का बड़ा शानदार स्वागत हुआ और मालाओं से वह लदी थीं। जवाहर लाल जी भी उस जलसे में बुलाए गए थे। महादेवी जी को देखकर बोले, "आपके बड़े ठाट हैं। बड़ी बड़ी मालाएं पहन रक्खी हैं।" महादेवी जी ने कहा, "मैं कवि हूं।" जवाहर लाल जी ने पूछा, "इसके क्या माने?" महादेवी जी ने बताया, "आप कविता के विषय हैं पर आप कवि नहीं हैं।" जवाहर लाल जी बोले, "अच्छा आप जीतीं, हम हारे।" जब उनसे कहा गया कि महादेवी जी को आशीर्वाद दें तो जवाहर लाल जी ने कहा, "मैं इन्हें आशीर्वाद क्या दूं? मैं तो इलाहाबाद के नाते इनसे मिलने चला आया।"

महादेवी जी ने ऋगवेद का भलीभांति अध्ययन किया है। बौद्ध धर्म में उनकी काफी रुचि रही है और उन्होंने इसके बारे में बहुत पढ़ा है। एक बार तो इन्होंने भिक्षुणी होने का निश्चय ही कर लिया था और अपनी सारी चीजें बांट दीं। सिर्फ सवाल यह रह गया था कि दीक्षा कहां ली जाय। जब वह इसके बारे में बौद्ध गुरु से तै करने

गई तो उन्होंने अपने मुंह के सामने एक छोटा लकड़ी का पंखा रख कर उनसे बातचीत की। मुलाकात के बाद महादेवी जी ने एक सज्जन से पूछा कि गुरू जी अपना मुह इस पंखे से क्यों ढंके थे। उन्हें बताया गया कि वह पंखा इसलिए था कि गुरू जी किसी नारी का चेहरा नहीं देखते। यह सुनकर उनके चित्त में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी और उन्होंने उसी समय यह निश्चय किया कि वह ऐसे कमजोर लोगों को अपना गुरू नहीं मानेंगी और भिक्षुणी होने का विचार छोड़ दिया।

मैंने उनसे यह पूछा कि वह नारियों के उत्थान के लिए बहुत दिनों से काम कर रही हैं परन्तु क्या उन्हें अब इस बात का विश्वास हो गया है कि स्त्रियों की दशा अब पहले से बहुत अच्छी है। उन्होंने कहा कि वह यह तो नहीं कह सकती कि जो वह चाहती थी वह हो गया है परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि नारी समाज ने बहुत उन्नति की है।

कुछ लोगों का कहना है कि महादेवी जी ने बहुत दिनों से कविता लिखना बंद कर दिया है और विद्यापीठ का काम और झगड़े उनके समय को ज्यादा नष्ट करते हैं। जब यह बात मैं ने उनसे छेड़ी तो उन्होंने कहा कि, "यह बात ठीक नहीं है। वाकया यह है कि बहुत सी चीजें जो मैं ने लिखी हैं वह अभी तक छप नहीं पाई हैं, क्योंकि पुस्तकों का अच्छा प्रकाशन एक अच्छी खासी समस्या है। असली बात यह है कि जो आदमी लिखता है और जिसे लिखने की प्रेरणा मिलती है वह बिना लिखे रह ही नहीं सकता। सच्चे लिखने वाले का लिखने का सिलसिला तो सदैव जारी रहता है। आप शरद बाबू और रविन्द्र नाथ ठाकुर की मिसाल लीजिए। हां यह बात जरूर है कि जो लोग किसी खास कारण से या किसी स्वार्थ से लिखने लगते हैं उनका लिखना जरूर बंद हो जाता है" उन्होंने मुझे बताया।

जब गांधी जी ने २१ दिन का व्रत किया था तब महादेवी जी ने ...स कविताएं लिखी थीं। उनको छपवाना चाहती थीं लेकिन देखा कि देश की फिजा खराब है और लोग गांधी जी के नाम

पर रोजगार कर रहे हैं । 'उनकी मृत्यु के बाद जिसे देखो गांधी जी के गीत गाता है । जिन्होंने जीवन में बापू की कोई भी बात नहीं अपनाई वह अब बापू के बड़े हिमायती हो रहे हैं । उन्होंने कहा वह कविताए इसलिए लिखी थी कि लिखने से उन्हें बड़ी सान्त्वना मिली थी । उनका विचार है कि अब वह उनको प्रकाशित करेंगी ।

विद्यापीठ की चरचा करते हुए वह बोली कि, "इस संस्था को चलाने में समय जरूर लगता है लेकिन यह तो मेरा परिवार सा हो गया है। यहां की पढ़ी हुई लड़कियां जो दूर दूर चली गई हैं मुझे अक्सर अपनी समस्याओं के बारे में लिखती हैं और मैं जो कुछ कर सकती हूं करती हूं । यह परिवार मुझे सान्त्वना देता है और इस बात का मौका देता है कि मैं उनकी सेवा कर सकूं । मैं इसे बड़ा सौभाग्य समझती हूं । अगर मैं चौबीसों घंटे लिखती ही रहूं और अकेली रहू व अपने विचारों में मग्न रहूं तो यह अलगाव मनुष्य के मानसिक और वास्तविक आत्मिक विकास के लिए अच्छा नहीं है," उन्होंने कहा ।

"जरा यह तो बताइए कि आप कैसे व्यक्ति को ऊंचा इंसान समझती है ?" मैंने उनसे पूछा । उन्होंने कहा, "वह व्यक्ति उनकी दृष्टि में सबसे उत्तम व्यक्ति है जो दूसरों के दुख को अपना दुख और दूसरे के सुख को अपना सुख समझ सके ।" महामैत्री और महाकरुणा में उनका विश्वास है । "गांधी और टैगोर," उन्होंने कहा, "दो ऐसे पुरुष थे जो दुनिया के दुख को अपना दुख मानते थे । वह दोनों एक तसवीर के दो पहलू थे । एक अपनी बात को अपनी भावनाओं द्वारा प्रकट करते थे और दूसरे अपने कार्यो से ।"

महादेवी जी ज्यादातर वियोग और व्यथा के गीत गाती है, लेकिन यह समझना कि वह निराशावादी है बिल्कुल गलत होगा । एक बार एक मोटर दुर्घटना के कारण उनको बहुत चोट आ गई । 'उनका एक होठ काफी कट गया परन्तु उन्होंने बहुत साहस से काम लिया और दुर्घटना के समय भी वह अपने दूसरे साथियों की पीड़ा के बारे में पूछती

हैं। किसी वस्तु से लोभित नहीं हो सकते। वह योगीवत् जीवन व्यतीत करते हैं और अहं को पूर्णतः विलोप करने में विश्वास करते हैं। गरीबों और अमीरों के समान रूप से हितैषी हैं। वह गांधी जी के सच्चे अनुयायी हैं। विनोबा के बचपन के बारे में बहुत कम ज्ञात है। वह अपने माता-पिता की ज्येष्ठ संतान हैं। इस विद्वान, योगी, दार्शनिक, कवि और लेखक ने सदैव शुद्ध और सात्विक जीवन व्यतीत किया है। उन्होंने छोटी अवस्था में ही अपना घर त्याग दिया। अपने माता-पिता और दादी से उन्होंने अनेक गुण विरासत में पाए हैं। उन्होंने धार्मिक और सात्विक जीवन व्यतीत किया है। उन सबका विश्वास था कि सभी मानव परमात्मा की संतान हैं और मानवों में कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनके मंदिर सब के लिए खुले थे। उस समय के लिए यह असाधारण प्रगतिशील विचार था। उनके दादा शम्भूराव मूर्ति के सामने भजन गाने के लिए मुसलमान संगीतज्ञों को आमंत्रित किया करते थे। विनोबा बचपन से ही समाचार पत्रों को पढ़ने के बड़े शौकीन थे। उनके घर में अच्छा पुस्तकालय था। उन्होंने प्रारम्भिक अवस्था में ही धार्मिक साहित्य का गहरा अध्ययन किया। इस साहित्य का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह लगभग १८ भाषाएं जानते हैं। एक बार उनकी माता ने उनसे कहा कि वह संस्कृत में गीता को नहीं समझ सकती। क्या इसका मराठी में अनुवाद है? इससे विनोबा को गीता को मराठी में अनूदित करने की प्रेरणा मिली। इस अनुवाद का मराठी साहित्य में उच्च स्थान है।

विनोबा को गांधीजी ने पहचाना। महात्मा जी ने अपने शिष्य के महान गुणों का अच्छी तरह अनुभव किया तथा उससे बहुत ही प्रभावित हुए। गांधी जी ने एक बार विनोबा को लिखा था—"मैं नहीं जानता कि तुम्हारे लिए किन विशेषणों का उपयोग करूं। तुम्हारे प्रेम और चरित्र की पवित्रता से मैं अत्यधिक प्रभावित हूं। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने में असमर्थ हूं।"

विनोबा ने गांधी जी के विचारों को तभी स्वीकार कि
वह स्वयं उन से संतुष्ट हो गए। बापू उनकी अनेक बातों में
लेते थे। वह विनोबा को अहिंसा के विषय में अधिकारी
मानते थे। वह बड़े धार्मिक हैं तथा गीता, कुरान और बाई
प्रकाण्ड विद्वान् हैं। उनका धार्मिक व्यक्तियों पर—भले
पारसी, पंडित या मौलवी हों—स्थायी प्रभाव पड़ता है।
कुमारप्पा ने लिखा है, "ऐसा लगता है मानों विनोबा हमारे
गहन आध्यात्मिकता और धार्मिक अनुभव के परिपक्व फल हैं
से अत्यन्त भिन्न मतावलम्बी तक उन्हें सम्मानित करते हैं
उनकी बातें सुनते हैं।"

विनोबा ने बहुत कुछ अपनी माता रुक्माबाई से सीखा। म
उन्हें अनेक भक्तिपूर्ण भजन सिखाए तथा उनके मन में शास्त्रों
रुचि पैदा की। उनकी मृत्यु के पूर्व सन् १९१८ में विनोबा गां
के साथ हो लिए। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में एक दिन उन्होंने
सब प्रमाण पत्र चूल्हे में जला डाले और कहा कि ये सब निरर
थे। यह देखकर उनकी माता को बड़ा आश्चर्य हुआ पर उन्होंने
नहीं कहा। वह गांधी जी के साथ रहने लगे पर इसका उनके
पिता को पता नहीं था। उन्होंने विनोबा के माता-पिता को
लिखित पत्र लिखा—"विनोबा मेरे साथ है। आपके पु
उनकी अवस्था को देखते हुए, चरित्र की असाधारण उच्च
और भावुकता प्राप्त की है। मुझे इतनी उपलब्धि के लिए
वर्षों तक कठोर आत्मसंयम करना पड़ा था।" कहा जाता है
इस पत्र में गांधी जी ने वास्तविक नाम 'विनायक' के स्थान
' लिखा था। तभी से सारा संसार उन्हें विनोबा के ना

...नोबा कई आन्दोलनों में भाग ले चुके थे तथा जेल
...नाम सन् १९४० में विख्यात हुआ। विनोबा

बर्णन गांधी जी से अच्छा कौन कर सकता था? [illegible]
विनोबा को व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए प्रथम सत्याग्रही चुना तब
उन्होंने उनके बारे में बताया कि "विनोबा कौन है तथा वह सब से
पहले क्यों चुने गए? विनोबा बी० ए० में पढ़ते थे पर उन्होंने सन्
१९१६ में मेरे भारत आने पर कॉलेज छोड़ दिया। वह संस्कृत के
विद्वान हैं। उन्होंने आश्रम के आरम्भिक दिनों में ही इसमें प्रवेश
किया। वह इसके प्रथम सदस्यों में हैं। उन्होंने संस्कृत का अध्ययन
करने के लिए आश्रम से एक वर्ष की छुट्टी ली। एक वर्ष की समाप्ति
के बाद बिना कोई सूचना दिए वह फिर आश्रम में आ गए। मैं यह
भूल ही गया था कि वह उस दिन आने वाले हैं। उन्होंने आश्रम की
सभी श्रमिक प्रवृत्तियों में भाग लिया है तथा मैल साफ करने से लेकर
रसोई पकाने तक का काम किया है। यद्यपि उनकी स्मरण शक्ति
आश्चर्यजनक है तथा वह स्वभावतः विद्यार्थी हैं फिर भी वह अपना
अधिकांश समय सूत कातने में लगाते हैं तथा इस कार्य में उन्होंने
विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है। उनका विश्वास है कि सर्वत्र सूत कातन
को प्रमुखता दी जानी चाहिए। इससे गांवों की निर्धनता दूर
होगी। वह जन्मजात शिक्षक हैं तथा उन्होंने आशा देवी की हस्तकला के
माध्यम से शिक्षा प्रणाली का विकास करने के कार्य में बड़ी सहायता की
है।······उन्होंने अपने हृदय से अस्पृश्यता का सर्वथा निराकरण
कर दिया। वह साम्प्रदायिक एकता में मेरे समान ही विश्वास करते
हैं। इस्लाम के तत्व को समझने के लिए उन्होंने कुरान के मूलरूप
का अध्ययन करने में एक वर्ष लगाया।"

अप्रैल १९५१ में जब संत विनोबा तेलंगाना क्षेत्र की पद यात्रा
कर रहे थे तो देखा कि वहां कम्युनिस्टों का बड़ा प्रभाव है और संघर्ष
छिड़े हैं। वहां विनोबा जी को भूदान यज्ञ की कल्पना हुई। पहले
दिन ही [illegible] एकड़ का दान मिला और पूरे दौरे में, जो ५१ दिन चला,
१२,२०१ एकड़ भूमि प्राप्त हुई। पंडित नेहरू ने [illegible]

दिन पूर्वी पाकिस्तान में बिताए और पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्यप्र
होते हुए अपने आश्रम वापिस आ गये। लगभग सवा तेरह बरस
अपनी इस पदयात्रा में वे लगभग साठ हजार मील चले और दो क
लोगों को अपना संदेश दिया। देश में अब तक ४१,७६,८१४
एकड़ जमीन भूदान में मिली है जिसमें से ११,७५,८३८.१३
जमीन ४,६१,६८१ भूमिहीनों को दी जा चुकी है। १८,५४,८८८
एकड़ जमीन खारिज कर दी गई और शेष ११,४६,०६४.६३
बांटना बाकी है। आजकल ज्यादा जोर ग्रामदान पर है। १,४५,
गांव ग्रामदान में आ चुके हैं। उनमें से कुछ में ग्राम-निर्वाण का
चल रहा है ताकि शोषण रहित और शासन-मुक्त समाज की स्थ
हो सके।

मैं विनोबा से गया के गांव में कई साल हुए मिला था। नि
सेवकों का एक दल उन्हें घेरे हुए था। वे किसी प्रभाव शाली
से उत्प्रेरित थे। यह वातावरण पूर्णतः गांधीवादी था इसे दे
मुझे सेवाग्राम की कुटिया में गांधीजी से अपनी भेंट का स्मरण हो आ
जब तक मैं उनके पास बैठा रहा तब तक मुझ पर उनके महान व्यक्ति
का प्रेरणाप्रद प्रभाव पड़ता रहा। मैंने अनुभव किया कि वि
में गांधी के समान ही विनोदप्रियता है। मेरी ओर इशारा कर
उन्होंने पूछा, "क्या तुम्हारा नाम हमारे राजर्षि टंडन जी से मि
मिलता है?" मैंने कहा, "हां, पर मैं बिना दाढ़ी वाला हूं।
पर वह खूब हंसे।

विनोबा गांधी जी के नैतिक उत्तराधिकारी हैं। वह प्रभाव
वक्ता हैं और अपनी किसी बात को शायद ही दुहराते हैं। समस
के प्रति उनका दृष्टिकोण चेतनाप्रद होता है। गांधी जी के
अद्वितीय और साधक शिष्य सदैव उच्च नैतिक स्तर पर रहत
उनका नाम भारत के इतिहास में अमर रहेगा। उनके ध्ये
पूरी पूर्ति चाहे हुई हो या न हुई हो और चाहे उनकी स्या

पर चर्चा करने के लिये उन्हें दिल्ली बुलाया तो अपने आश्रम (जो वर्धा से चार मील पर है) से वे पैदल गये। दिल्ली तक की यात्रा में उन्हें १८,४३६ एकड़ जमीन मिली।

इससे प्रोत्साहित होकर सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं ने १६ अप्रैल १९५२ को तय किया कि दो साल के अन्दर २५ लाख एकड़ जमीन प्राप्त करेंगे। उनका यह लक्ष्य पूरा हो गया। १८ अप्रैल १९५४ को जब बोधगया में अखिल भारत सर्वोदय सम्मेलन हुआ तो घोषणा की गई कि सारे देश में अब तक २७,६३,४६५ एकड़ जमीन मिल चुकी है। बोधगया में ही श्री जयप्रकाश नारायण जी ने सर्वोदय आन्दोलन के लिए अपने जीवन-दान का ऐलान किया।

विनोबा जी एक के बाद दूसरे प्रदेश की पदयात्रा पर थे। उड़ीसा में उन्होंने पूरी भूमि-क्रान्ति या ग्रामदान का आवाहन किया। १९५५ की जनवरी से सितम्बर तक वे वहां रहे और ८१२ गांव ग्रामदान में प्राप्त किये। फिर वे दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल पड़े—आंध्र, तामिलनाडु, केरल और कर्नाटक। कर्नाटक की पदयात्रा के दौरान में २१–२२ सितम्बर, १९५७ को देश के प्रमुख नेता चलवाल में जमा हुए। वहां ऐतिहासिक ग्रामदान परिषद् हुई और सर्वसम्मति से प्रकाशित वक्तव्य में कहा गया कि "विनोबा जी के मिशन की ओर, राष्ट्रीय तथा सामाजिक प्रश्नों को अहिंसक और सहकारी ढंग से हल करने के उनके प्रयत्नों की हम बड़ी सराहना करते हैं और भारतीय जनता के सभी अंगों से अपील करते हैं कि इस मिशन को अपना उत्साह-युक्त समर्थन दें।" अगले दिन पंडित नेहरू ने कहा था—"ग्रामदान को हम मानते हैं, यह अच्छी चीज है और आगे बढ़ेगी।"

विनोबा जी महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब होते हुए कश्मीर गये। वहां से मध्यप्रदेश आये। रास्ते में चम्बल घाटी के क्षेत्र में उन्नीस नामी डाकुओं ने उनके आगे समर्पण किया। फिर विनोबा जी ने एकदम पूर्व में असम की राह पकड़ी। असम से लौटते हुए पंढ

दिन पूर्वी पाकिस्तान में बित...
होते हुए अपने आश्रम वापिस आ गये । लगभग सवा तेरह बरस
अपनी इस पदयात्रा में वे लगभग साठ हजार मील चले और दो क
लोगों को अपना संदेश दिया । देश में अब तक ४१,७६,८१५
एकड़ जमीन भूदान में मिली है जिसमें से ११,७५,८३८.१३
जमीन ४,६१,६८१ भूमिहीनों को दी जा चुकी है । १८,५४,८८८
एकड़ जमीन खारिज कर दी गई और शेष ११,४६,०९४.६३
बांटना बाकी है । आजकल ज्यादा जोर ग्रामदान पर है । १,४५,
गांव ग्रामदान में आ चुके हैं । उनमें से कुछ में ग्राम-निर्माण का
चल रहा है ताकि शोषण रहित और शासन-मुक्त समाज की स्थ
हो सके ।

मैं विनोबा से गया के गाव मे कई साल हुए मिला था । नि
सेवकों का एक दल उन्हें घेरे हुए था । वे किसी प्रभाव शाली
से उत्प्रेरित थे । यह वातावरण पूर्णतः गांधीवादी था इसे दे
मुझे सेवाग्राम की कुटिया में गांधीजी से अपनी भेंट का स्मरण हो अ
जब तक मैं उनके पास बैठा रहा तब तक मुझ पर उनके महान व्यि
का प्रेरणाप्रद प्रभाव पड़ता रहा । मैंने अनुभव किया कि वि
में गांधी के समान ही विनोदप्रियता है । मेरी ओर इशारा कर
उन्होंने पूछा, "क्या तुम्हारा नाम हमारे राजर्षि टंडन जी से मि
मिलता है ?" मैंने कहा, "हां, पर मैं बिना दाढ़ी वाला हूं ।
पर वह खूब हंसे ।

विनोबा गांधी जी के नैतिक उत्तराधिकारी हैं । वह प्रभाव
बक्ता हैं और अपनी किसी बात को शायद ही दुहराते हैं । सम
के प्रति उनका दृष्टिकोण चेतनाप्रद होता है । गांधी जी व
अतितीव और साधक शिष्य सदैव उच्च नैतिक स्तर पर रह
उनका नाम भारत के इतिहास में अमर रहेगा । उनके ध्ये
पूरी पूर्ति चाहे हुई हो या न हुई हो और चाहे उनकी स्या

डंका पिटे या न पिटे मगर उनके विचारों की सच्चाई, लगन और योग्यता में किसी को शक नहीं हो सकता। वह ७५ साल के हो गए हैं, मगर अब भी उनके हृदय में देश सेवा की ज्योति जोरों से [illegible]